इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष २ अंक ४ पौष मास कलियुगाब्द ५१११ जनवरी २०१०

मार्गदर्शक :
ठाकुर राम सिंह
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा
प्रो० सतीश चन्द्र
सुश्री चारु मित्तल

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१(हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्य :
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपये
E-mail : *itihasdivakar@yahoo.com*

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संवीक्षण

भारत विभाजन का ऐतिहासिक मूल कारण — ठाकुर राम सिंह — ३

दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति — डॉ. कुलदीप अग्निहोत्री — १०

गोधन

पाणिनि की अष्टाध्यायी में गोधन — वासुदेव पोद्दार — १६

गाय के गोबर से आंगन लिपल.. — मृदुला सिन्हा — २०

जगत विभूति

महर्षि कणाद — प्र.ग. सहस्रबुद्धे — २३

विविधा

हिन्दू पौराणिक उपाख्यानों में विज्ञान — विश्व मोहन तिवारी — ३३

भगवान् महादेव पर बिजली पात — विद्याधर नेगी — ४०

ध्येय पथ

राष्ट्रीय परिसंवाद — ४३

सम्पादकीय

स्वस्ति भवते सगवे सवत्साय

महर्षि पाणिनि के व्याकरणशास्त्र अष्टाध्यायी के व्याख्याता आचार्य कात्यायन के काशिकावृत्ति ग्रन्थ के अनुसार उस काल के लोक व्यवहार में आशीर्वाद रूप में यह वचन कहा जाता था– ***स्वस्ति भवते सगवे सवत्साय*** अर्थात् ***गाय और गोवत्स के साथ आप का जीवन मंगलमय हो।*** गोवत्स शब्द यहां बछड़ी, बछड़ा, बैल आदि सम्पूर्ण गोधन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि कालीन भारतवर्ष पुस्तक में गाय, बैल आदि गोधन का विवेचन करते हुए भारतीय संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान् डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा यह प्रसंग उद्धृत किया गया है। एतद् सम्बन्धी लेख इतिहास दिवाकर के प्रस्तुत अंक में सम्मिलित है। इस वर्ष आयोजित विश्व मंगल गो–ग्राम यात्रा के अनुपम प्रयास की दृष्टि से इस संदर्भ की विशिष्ट प्रासंगिकता है।

गाय की महिमा विश्वव्यापी है। इसीलिए गाय को विश्वमाता कहा गया है – ***गावो विश्वस्य मातरः***। भारतीय शास्त्रों में गाय के अनन्त श्रेष्ठ गुणों का वर्णन हुआ है। भारतीय लोकमानस में भी गाय और गोवंश के प्रति गूढ़ आस्थाएं हैं। आज पाश्चात्य अन्धानुकरण और माया मोह के मकड़जाल में हमारी ये आस्थाएं क्षीण हुई हैं। गोहत्या पर प्रतिबन्ध तो दूर, इसके पक्ष में अलज्जित तर्क दिए जाते हैं। गाय और गोवंश के बहुविध महत्त्व के सम्बन्ध में समाज की ज्ञानहीनता से गोवंश अनाथ भटक रहा है। ऐसी स्थिति में प्रकृति और मानव के समक्ष अनेक चुनौनियां पैदा हुई हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए विश्व मंगल गो–ग्राम यात्रा एक सार्थक जन–जागरण अभियान है।

भारतीय परम्परा में गाय अध्यात्म मार्ग की वैतरणी है। गाय भारत की संस्कृति है। गाय पर ही हमारी अर्थ व्यवस्था और भौतिक सम्पन्नता निर्भर है। गाय की उपेक्षा से ग्रामीण अर्थ व्यवस्था चरमरा रही है। ट्रैक्टर, ट्राली से खेतों की जुताई तथा रासायनिक खादों के प्रयोग से भूमि बंजर होती जा रही है। इन समस्याओं से पार पाने के लिए संकर नस्ल की कृत्रिम गायों का मोह त्याग कर प्राकृतिक गुणसम्पन्न उन्नत देशी नस्ल की गायों का संपोषण और संवर्धन अत्यावश्यक है।

भगवान् रघुनन्दन रामचन्द्र के प्रपितामह परम प्रतापी सम्राट महाराजा रघु के पिता महाराजा दिलीप गौमाता की रक्षा के लिए शेर के आगे अपने जीवन का बलिदान देने को तत्पर हुए थे। गोपालनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण की गो सेवा तो सर्वविदित है। भारत का इतिहास गो भक्तों के अनेक आदर्श चरित्रों से आलोकित है। इन चरित्रों के आलोक में अतुल सम्पदा की स्वामिनी गाय का संपोषण और सम्मान करना हमारा परम कर्त्तव्य है। इसी में प्रकृति और मानव की सुरक्षा सन्निहित है।

विनीत,

डॉ0 विद्या चन्द ठाकुर

संवीक्षण

भारत विभाजन का ऐतिहासिक मूल कारण

• ठा. राम सिंह

ईस्वी सन् की ८वीं शताब्दी में इस्लाम ने आक्रामक के नाते हिन्दुस्थान में प्रवेश किया और सारे देश का इस्लामीकरण करने के लिये हिन्दू समाज के विरुद्ध जिहाद की घोषणा कर दी। उस समय हिन्दुस्थान में राजनीतिक दृष्टि से कोई सम्राट हिन्दू समाज को एकजुट रखने वाला नहीं था। देश उस समय छोटे-छोटे ५०० हिन्दू राज्यों में बंटा हुआ था। परिणामत: १००० वर्षीय हिन्द-मुस्लिम महायुद्ध शुरू हुआ। यह संघर्ष हिन्दुस्थान की पश्चिमी सीमा हिन्दुकुश-ताशकन्द और यारकन्द से आरम्भ हुआ। हर ग्राम, हर नगर में दिन-रात लड़ाई चल रही है। हिन्दू हर मोर्चे पर हार रहा है और मुसलमान हर मोर्चे पर जीत रहा है।

उपरोक्त स्थिति १६वीं शताब्दी तक चलती रही, परंतु १७वीं शताब्दी में हिन्दुस्थान के इतिहास में एक चमत्कारिक परिवर्तन हुआ— हिन्दू हर मोर्चे पर जीत रहा है और मुसलमान हर मोर्चे पर हार रहा है। इस का यह कारण था कि १४वीं शताब्दी से लेकर १६ वीं शताब्दी तक *भक्ति आन्दोलन* के द्वारा एक महान हिन्दू शक्ति का जागरण सारे देश में हुआ।

दक्षिण भारत में शिवाजी महाराज ने विदेशी मुगलों के विरुद्ध २५५ युद्ध लड़कर उनकी छाती के ऊपर पांव रखकर ३५० मील लम्बे और १५० मील चौड़े हिन्दू साम्राज्य का निर्माण किया। सन् १६७५ में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। उसमें हिन्दू साम्राज्य के श्रीगणेश की घोषणा की गयी। शिवाजी की पूर्व की यह भी घोषणा थी कि *हिन्दुस्थान की सीमा उत्तर में मानसरोवर से दक्षिण में कन्याकुमारी तक है। मैं इसे स्वतंत्र करके रहूंगा।*

शिवाजी की मृत्यु के १००वर्ष बाद हिन्दू साम्राज्य की सेनाओं ने काबुल में भगवा लहराया। दिल्ली का मुगल बादशाह हिन्दू शक्ति (मराठा) की शरण में आ गया और देश की खोई हुई प्रभुसत्ता हिन्दुओं के हाथ में आ गयी।

पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह के राज्य की स्थापना हो गयी थी। उसके विश्व विख्यात सेनापति हरिसिंह नलवा ने अतुलनीय पराक्रम से गत् कुछ शताब्दी से मुस्लिम अत्याचारों की जो नदी पश्चिम की ओर से पूर्व की ओर बह रही थी उस की दिशा पश्चिम की ओर बदल डाली।

भक्ति आन्दोलन की इस महान शक्ति के कारण हिन्दू वीरों ने मुगल साम्राज्य को जड़ से उखाड़ फेंका। परंतु इसी समय अंग्रेज जो व्यापारी के रूप में हिन्दुस्थान आये थे, वे एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरे।

अत: मुस्लिम और अंग्रेज इन दोनों शत्रुओं से संघर्ष चला। एक शत्रु अर्थात् इस्लाम को तो धराशायी कर दिया और देश में हिन्दुओं का बोल-बाला हो गया। परंतु अंग्रेजों के आंशिक रूप में स्थापित विदेशी राज्य को ध्वस्त कर उनको देश से भगाने के लिये संघर्ष आरंभ हो गया। उनसे लगातार चार युद्ध (मराठा युद्ध) हुये परंतु चारों युद्धों में पराजित होना पड़ा और अंग्रेजों के राज्य की स्थापना हिन्दुस्थान में हो गयी। देश की प्रभुसत्ता उनके हाथ में चली गयी।

सन् १८५७ का स्वातंत्र्य संग्राम

सन् १८५७ में नाना पेशवा के नेतृत्व में अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने के लिए अंतिम संग्राम हुआ। इस युद्ध में उनके गुरु स्वामी दयानन्द थे। इस महान स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेज हार चुके थे और उनका अंग्रेज वाईसराय इंग्लैण्ड को भागने की तैयारी कर रहा था, परन्तु *घर का भेदी लंका ढाये* अपने देश के कुछ राजाओं ने निजी स्वार्थ के लिये अंग्रेजों का साथ दिया और हारा हुआ अंग्रेज जीत गया और पुन: हिन्दुस्थान की सत्ता का स्वामी बन गया।

सन् १८५७ के संग्राम के बाद देश की स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। हिन्दुस्थान में अंग्रेज कम्पनी सरकार का राज्य सीधा ब्रिटेन की सरकार के अधीन हो गया। भक्ति आन्दोलन के द्वारा उत्पन्न हुई महान हिन्दू शक्ति का समारोप हो गया। परंतु फिर भी हमारे वीर और महान देश भक्तों ने हाथ खड़े कर पराजय को स्वीकार नहीं किया। वे थके नहीं, झुके नहीं, डटे रहे, और देश को पुन: स्वतन्त्र करने के लिये नये युग की नई प्रेरणा से *हिन्दू सांस्कृतिक पुनरुत्थान* (Hindu Renacence) का आन्दोलन शुरु हुआ।

''त्रिसूत्री योजना'' हिन्दू, हिन्दुस्तान और हिन्दू राष्ट्र

सन् १८५७ के संग्राम तक हिन्दू शब्द का सम्मान सारी दुनिया भर में था और हमारी पहचान हिन्दू थी। विदेशी मुस्लिम आक्रान्तों के विपक्ष में १०००—वर्षीय महायुद्ध हिन्दू के नाम से लड़कर उनके विदेशी मुस्लिम मुगल साम्राज्य को जड़ से उखाड़ फैंका। अंग्रेजों ने हमारी इस राष्ट्रीय पहचान को समाप्त करने के लिये सन् १८५७ के बाद एक ***त्रिसूत्री योजना*** बनाई। इसका पहला सूत्र था— De-Hindulisation of The Hindus अर्थात हिन्दुओं का अहिन्दूकरण करना। उनको साम्प्रदायिक बनाना।

दूसरा सूत्र था De-nationalisation of The Hindus अर्थात हिन्दुओं का अराष्ट्रीयकरण करना। तीसरा और अंतिम सूत्र था De-socialisation of The Hindu अर्थात हिन्दू समाज को विघटित करना।

मध्य एशियायी सिद्धांत का आविष्कार

उपरोक्त ''त्रिसूत्री'' योजना को कार्यान्वित करने के लिये अंग्रेजी विदेशी सरकार ने आर्यों के मूल अभिजन के लिये *मध्य एशियायी सिद्धांत* का आविष्कार कर भारत के इतिहास को विकृत करने का षड्यन्त्र रचा। १८ अप्रैल सन् १८६५ को लन्दन में Royal Asiatic Society लन्दन की बैठक आयोजित की गयी। बैठक Royal Asiatic Society के अध्यक्ष Stongsfield की अध्यक्षता में की गयी। बैठक का विषय था ***आर्यों का आदि देश (मूल अभिजन)।*** इस बैठक का आयोजन अंग्रेजी सरकार के मार्गदर्शन में हुआ था। इसमें न तो यूरोप का कोई प्रतिनिधि था और न ही भारत का। Thomson नाम के अंग्रेज ने आर्यों के मूल अभिजन का विषय सब के सम्मुख प्रस्तुत किया। इस पर परस्पर चर्चा हुई और परिणाम स्वरूप सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया कि आर्यों का आदि देश मध्य एशिया था और कालक्रम में वे वहां से अन्य देशों में गये।

मध्य एशिया को आर्यों का मूल अभिजन मानकर यह भी कहा कि आर्य खेती-बाड़ी करते थे और भेड़ बकरियां चराते थे। कालक्रम में जलवायु में परिवर्तन हुआ और वर्षा कम होने लगी। इससे खेती करने में असुविधा हो गयी और आर्यों ने मध्य एशिया को छोड़ने का निर्णय कर लिया। उनकी एक शाखा यूरोप चली गयी। उन्होंने वहां के आदिवासियों को पराजित कर अपना राज्य स्थापित कर लिया। दूसरी शाखा ईरान और लघु एशिया में पहुंची। उसने भी वहां वही किया जो यूरोप में गयी शाखा ने किया। तीसरी शाखा के आर्यों ने पामीर के पर्वत को पार कर हिन्दुस्थान के पंजाब प्रांत पर आक्रमण कर दिया। वहां के मूल निवासी द्रविड़ थे। वे आर्यों का मुकाबला नहीं कर सके। बहुत से मारे गये। कुछ को आर्यों ने अपना दास बना लिया और बाकी दक्षिण की ओर भाग गये। आर्यों ने पंजाब पर अधिकार कर लिया और भारत का आर्यकरण पश्चिम से पूर्व की ओर करना शुरू किया। यहां के मूल निवासी कोल, भील, और द्रविड़ थे। आर्यों के आक्रमण के सामने वे टिक न सके। उनमें भी बहुत से मारे गये और कुछ को आर्यों ने अपना दास बना लिया और बाकी जंगलों की ओर भाग गये। इस प्रकार आक्रामक आर्यों ने भारत में अपने राज्य की स्थापना आज से ३५०० वर्ष पूर्व कर ली।

अंग्रेज सरकार ने मध्य एशियायी सिद्धांत को मान्यता दे दी और आर्यों के विषय का समावेश Oxford History of India और Cambridge History of India में कर लिया।

भारत की अंग्रेज सरकार ने कानून पास कर आर्यों का विषय शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल कर दिया। मध्य एशियायी सिद्धांत का प्रचार करने के लिये अंग्रेजी सरकार ने लाहौर में Oriental College शुरू किया और बनारस में क्वीनस कालेज। परिणाम स्वरूप भारत की शिक्षा संस्थाओं में गत १५० वर्षों से यह पढ़ाया जा रहा है कि आर्य मध्य एशिया के रहने वाले थे। हिन्दुस्थान उनका मूल देश नहीं है।

भारत के इतिहास और साहित्य में कहीं भी आर्यों के बाहर से हिन्दुस्थान में आने का संकेत भी नहीं है। आर्य शब्द जाति वाचक नहीं है। आर्य का अर्थ है सभ्य, सुसंस्कारित, चरित्रवान और मानवीय गुणों से युक्त पुरुष। मनुस्मृति के अनुसार आर्यों की १० शाखाएं हैं– पांच द्राविड़ और पांच गौड़। केवल तमिलनाडू ही द्राविड़ नहीं है अपितु केरल, आन्ध्र, महाराष्ट्र, सिंध और मध्यप्रदेश भी द्राविड़ है। बाकी बचे भारत में पांच गौड़ हैं। यह विभाजन जाति-वाचक नहीं अपितु भौगोलिक है। मध्य एशियायी सिद्धांत की कल्पना यूरोप की मानसिकता में १८वीं शताब्दी में उपजी जो पूर्णत: असत्य है। इस मिथ्या सिद्धांत का जो समय बताया गया है उस काल में मध्य एशिया भारत का प्रांत था। आर्यों के मूल अभिजन के लिये मध्य एशियायी सिद्धांत के आविष्कार के आधार पर जो इतिहास का विकृतिकरण कर अंग्रेजों ने भारत के इतिहास के साथ एक बहुत बड़ा अन्याय किया है।

इतिहास के उपरोक्त विकृतिकरण के कारण देश में विघटनकारी वृत्तियां आरंभ हो गयी-यथा आय-द्रविड़ समस्या, दक्षिणवासी-उत्तरवासी, ब्राह्मण-अब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, छूत-अछूत। इसके कारण वर्णों के आधार पर ब्राह्मण महासभा, क्षत्रिय महासभा, वैश्य महासभा आदि का निर्माण हो गया और अंग्रेजी सरकार ने इन संस्थाओं को बढ़ने का प्रोत्साहन प्रदान किया।

त्रिभगिनी सम्प्रदाय के सिद्धान्त का आविष्कार *(Three Sister Communities)*

विदेशी अंग्रेजी सरकार उपरोक्त विकृतिकरण तक ही नहीं रुकी, उसने हमारी सनातन, पुरातन राष्ट्रीयता जिसका श्रीगणेश विश्व के सब से पुराने ग्रन्थ ऋग्वेद से होता है उसको नष्ट करने के लिये *''त्रिभगिनी संप्रदाय''* के मिथ्या सिद्धांत का आविष्कार किया। इतिहास को विकृत कर अंग्रेजी सरकार ने यह प्रतिपादित किया कि भारत हिन्दुओं का मूल देश नहीं है। इनके पूर्वज आर्य ३५०० वर्ष पूर्व मध्य एशिया से आक्रामक के नाते भारत में आए, उसके बाद मुसलमान आये। अत: वह भी विदेशी है और हिन्दुस्थान उनका भी देश नहीं है। उनके बाद ईसाई आये। कालक्रम में यह तीनों सम्प्रदाय इस देश में बस गये। हम जब इस देश में आये तो यहां न तो कोई सभ्यता थी, न ही संस्कृति और न ही राष्ट्रीयता।

हमने इस देश को राजनीतिक एकता प्रदान की। अब इस देश के मालिक हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई यह तीन सम्प्रदाय है। ये आपस में मिलकर नये राष्ट्र का निर्माण करें और जब यह मिलकर नये राष्ट्र का निर्माण कर लेंगे तो हम भारत छोड़ कर चले जायेंगे। *त्रिभगिनी संप्रदाय* के सिद्धांत को कार्यान्वित करने के लिये लार्ड ह्यूम (Hume) ने सन् १८८५ में Indian National Congress की स्थापना की। संस्था का नाम विदेशी, संस्थापक विदेशी और उद्देश्य साम्राज्यवादी। इस का नारा था– *हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई सब हैं आपस में भाई-भाई।*

लाल (लाला लाजपतराय), पाल (विपिन चन्द्र पाल), बाल (बाल गंगाधर तिलक) और अन्य राष्ट्रवादियों ने त्रिभगिनी सम्प्रदाय के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया और घोषणा की कि मुसलमान और ईसाई हमारे साथ आये या न आये हम अकेले ही देश को स्वतंत्र कर लेंगे। अंग्रेजों ने उनका साथ नहीं दिया। उन्होंने उनका साथ दिया जो उनके आविष्कृत *त्रिभगिनी संप्रदाय के सिद्धान्त* को मानने वाले थे। बाल गंगाधर तिलक जी की मृत्यु २०वीं शताब्दी के दूसरे दशक में हो गयी। उसी दशक में लाला लाजपतराय चले गये और अरविंद घोष पांडिचेरी चले गये। अत: इस प्रकार कांग्रेस में हिन्दू राष्ट्रवादियों का युग समाप्त हो गया।

कांग्रेस की बागडोर *त्रिभगिनी सम्प्रदाय* के सिद्धांत को मानने वाले नेताओं के हाथ में आ गयी। इनके नेता महात्मा गान्धी और पंडित जवाहर लाल नेहरु मुख्य थे। इनके मार्गदर्शन में कांग्रेस ने यह स्वीकार कर लिया कि यह देश केवल हिन्दुओं का ही नहीं अपितु मुसलमानों और ईसायियों का भी है।

अत: तीनों सम्प्रदायों को मिलाकर एक नये राष्ट्र के निर्माण का अभियान महात्मा गान्धी के नेतृत्व में शुरू हुआ। गान्धी जी ने अपना केन्द्र वर्धा में बनाया। वे प्रत्येक दिन सांय को प्रार्थना करते थे। उनकी इस प्रार्थना सभा में कांग्रेस के अन्य बड़े बड़े नेता भी आते थे। प्रार्थना का घोष वाक्य था– *ईश्वर अल्लाह तेरे नाम सब को सम्मति दे भगवान।* महात्मा जी रोज चरखा भी चलाते थे। चरखा कातते समय यह गीत भी गाया जाता था– *चरखा मोरा करता धूं धूं– यह तो याद कराता अल्लाह है मौला तू तू।*

वर्धा शिक्षा योजना

महात्माजी ने वर्धा शिक्षा योजना तैयार की और इसके लिये जो प्रथम पुस्तक तैयार की गयी उस में लिखा था '' मौलवी वशिष्ठ, शाहजादा राम और बेगम सीता''।

मुस्लिम लीग के साथ सन् १९१६ में लखनऊ सन्धि हुई। उसमें महात्मा गान्धी के मार्गदर्शन में मुस्लिम लीग की सात शर्तें मान ली गयी। बाद में सात की १४ हो गई, उसके बाद २७ हो गयी और अंत में मुसलमानों के लिए पाकिस्तान की मांग मुस्लिम लीग का ध्येय बन गया। महात्मा गान्धी ने तीनों सम्प्रदायों को मिलाने और नये राष्ट्र के निर्माण में अपनी सारी शक्तियां लगाकर काम किया, परंतु नये राष्ट्र का तो निर्माण नहीं हुआ अपितु सन् १९४७ में देश का विभाजन हो गया। *त्रिभगिनी सम्प्रदाय के सिद्धांत* के अनुसार नया राष्ट्र निर्माणाधीन है और गान्धी जी भारतीय राष्ट्र के पिता नहीं अपितु इस निर्माणाधीन राष्ट्र के पिता है।

कांग्रेस ने सन् १९३५ के चुनाव में अपने घोषणा पत्र में यह आश्वासन दिया था कि वह देश को अखण्ड रखेंगे।

परंतु आगे का इतिहास यह बताता है कि जब महात्मा गांधी का जिन्ना के साथ पाकिस्तान के बारे में वार्तालाप हो रहा था तो उस समय अकाली दल के तत्कालीन नेता मास्टर तारासिंह को यह शक हुआ कि कांग्रेस पाकिस्तान की मांग को मान लेगी। वह

महात्मा गान्धी को मिलने गये और गान्धी जी को कहा कि हम अखण्ड हिन्दुस्थान में रहना चाहते है परंतु यदि आपने पाकिस्तान की मांग को स्वीकार कर लिया तो हमें खालिस्तान चाहिये। गान्धी जी ने कहा कि *पाकिस्तान नहीं बनेगा यदि बनेगा तो हमारे शवों पर ही बनेगा*। गान्धी जी को मिलने के बाद मास्टर तारा सिंह पंडित जवाहर लाल नेहरु को मिलने गये और उन्होंने कहा कि ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि कांग्रेस पाकिस्तान की मांग को स्वीकार करने वाली है। इस पर जवाहर लाल नेहरु ने कहा कि *पाकिस्तान यह मूर्खों की कल्पना है। यह कभी नहीं बन सकता।*

देश को अखण्ड और अविभाज्य रखने के लिए कांग्रेस ने जो आश्वासन दिये थे उनके बाबजूद देश का विभानज हो गया। इसका वास्तविक और मूल कारण खोजने की आवश्यकता है। पूर्व विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कांग्रेस ने अंग्रेजों द्वारा आविष्कृत *त्रिभगिनी सम्प्रदाय के सिद्धांत* को स्वीकार कर लिया।

विदेशी इस्लाम यहां आया देश का इस्लामीकरण करने के लिये और ईसायत आई ईसाईकरण करने के लिये। यह दोनों ही विचारधाराएं विदेशी है। ये इस देश के स्वामी कैसे हो सकते हैं? कांग्रेस अंग्रेजों के षड्यन्त्र के मायाजाल में फंस गयी और उसके नेताओं ने अपनी भारतीय राष्ट्रीयता को भुलाकर यह स्वीकार कर लिया कि यहां पर पहले कोई राष्ट्रीयता नहीं थी और अब हम सबको मिलाकर एक नये राष्ट्र का निर्माण करना है। यह कांग्रेस की सब से बड़ी भूल थी।

मित्र राष्ट्र द्वितीय विश्व युद्ध जीत तो गये, परन्तु उनके अपने देश की हालत अत्यंत दुर्बल हो गयी। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस और उनकी आज़ाद हिन्द सेना के कारण अंग्रेजों की भारत की सेना, वायुसेना, जल सेना और पुलिस जिनके द्वारा वे अपने हिन्दुस्थान के साम्राज्य का संचालन करते थे, वे उनके खिलाफ हो गये। अत: अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का निश्चय कर लिया, परंतु उनका पूर्व का निर्णय था कि जब कभी उन्हें भारत छोड़ना पड़ेगा तो वह इसे विभाजित करके जायेंगे। द्वितीय विश्वयुद्ध में कांग्रेस ने अंग्रेजों का साथ नहीं दिया, परंतु मुस्लिम लीग ने उनकी उस युद्ध में सहायता की थी। अत: अंग्रेज सरकार मुस्लिम लीग के पक्ष में थी।

मुस्लिम लीग का पाकिस्तान प्राप्त करने के लिये सीधी कार्रवाई

सन् १९४६ में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्राप्त करने के लिये सीधी कार्यवाही *(Direct action)* शुरु की। इसके परिणामस्वरूप सारे देश में हिन्दुओं पर आक्रमण शुरू हो गये। कांग्रेस जो तीनों सम्प्रदायों को मिला रही थी वह घबरा गयी। उस समय देश में तीन पक्ष थे– अंग्रेज सरकार, कांग्रेस और मुस्लिम लीग। माऊंटवेटन वायसराय थे। इन तीनों पक्षों में देश के सम्बन्ध में बातचीत शुरू हुई। मुस्लिम लीग पाकिस्तान प्राप्त करने पर अडिग थी। कांग्रेस ने *त्रिभगिनी सिद्धांत* पहले ही स्वीकार कर लिया था। अत: कांग्रेस के नेतृत्व ने आपस में विचार-विमर्श कर यह निर्णय लिया कि मुसलमानों को

इनका देश का हिस्सा दे दिया जाये अर्थात् कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग स्वीकार कर ली। ईसाई सम्प्रदाय का काम और प्रभाव इतना नहीं था कि वह ईसाईस्तान की मांग कर सकें।

जब कांग्रेस और मुस्लिम लीग में पाकिस्तान बनाने की सहमति हो गयी तब इग्लैण्ड की पार्लियामेंट में भारत के विभाजन का दस्तावेज़ पारित हुआ। उसके अनुसार भारत को दो भागों में बांटा गया– (१) Dominion of Pakistan (मुसलमानों के लिये) (२) और Dominion of Hindustan (हिन्दुओं के लिये)।

पाकिस्तान की मुस्लिमलीग की मांग को पहले जवाहर लाल नेहरु ने स्वीकार किया और बाद में सरदार पटेल ने। परंतु इसकी स्वीकृति कांग्रेस की कार्यकारी समिति के द्वारा होना आवश्यक था। उसकी बैठक आयोजित हुई और विभाजन का विषय स्वीकृति के लिये उसके सम्मुख रखा गया। कार्यसमिति ने उसे अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस के नेतृत्त्व के लिये संकट पैदा हो गया। नेहरु और सरदार पटेल सहायता के लिए महात्मा गान्धी की शरण में गये। गान्धी जी कार्यसमिति की बैठक में गये और उन्होंने कहा कि तुम्हारे नेताओं ने देश का बंटवारा स्वीकार कर लिया है। मैं इस के खिलाफ हूँ, परन्तु मैं बूढ़ा हो गया हूँ और देश को अखंड रखने के लिये कोई नया आन्दोलन करने में असमर्थ हूँ। अत: मेरा निवेदन है कि आप अपने नेताओं का निर्णय मान लें। सब चुप हो गये और देश विभाजन का प्रस्ताव पास हो गया।

जसवंत सिंह ने अपनी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक में जो यह लिखा है–'That Nehru was the Draftsman of the partition- (नेहरु विभाजन के मानचित्रकार अथवा प्रारूपकार थे), यह शतप्रतिशत सत्य है। विभाजन के दस्तावेज़ पर लन्दन में सब से पहले हस्ताक्षर जवाहर लाल नेहरु ने किये थे और बाद में जिन्ना ने। इससे स्पष्ट है कि देश के विभाजन के लिये कांग्रेस हीपूर्णत: दोषी है। जहां तक महात्मा गान्धी का सम्बन्ध है वह भी विभाजन के लिये दोषी है। यदि वे कांग्रेस की कार्यसमिति का साथ देते तो विभाजन रुक सकता था, परंतु उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने यह स्वीकार कर लिया था कि यह देश ईसाइयों, मुसलमानों और हिन्दुओं इन तीनों सम्प्रदायों का है। अत: इससे बिना सन्देह के स्पष्ट हो जाता है कि भारत के विभाजन का मूल ऐतिहासिक कारण *त्रिभगिनी सम्प्रदाय का मिथ्या सिद्धांत* है। इतिहासकारों ने इसका प्रतिपादन नहीं किया है।

दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार

• डॉ० कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

दक्षिण पूर्व एशिया का क्षेत्र भारत और चीन के मध्य में स्थित है। ब्रह्मदेश से लेकर थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, लाओस, वियतनाम, कंबोडिया व इनसे जुड़े अन्य देशों को इस क्षेत्र में सम्मिलित किया जाता है। भारत और चीन के बीच स्थित होने के कारण इन देशों में भारतीय और चीनी संस्कृति का प्रचार, प्रसार और प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। इसलिए इतिहास में इस क्षेत्र को हिन्द चीन के नाम से भी जाना जाता है। इस पूरे क्षेत्र में वैसे भी बहुत बड़ी संख्या में भारतीय और चीनी बसे हुए हैं। यदि और भी सरल शब्दों में कहना हो तो यही कहना होगा कि चाहे इस क्षेत्र का नाम हिन्द चीन है, लेकिन इसमें मूल प्रभाव भारतीय संस्कृति का ही है क्योंकि प्रकारांतर से चीनी संस्कृति भी भारतीय संस्कृति का ही प्रतिफलन है। दक्षिण पूर्व एशिया के अधिकांश देश महात्मा बुद्ध के अनुयायी हैं। यह अलग बात है कि कहीं उसका महायान स्वरूप प्रभावी है और कहीं हीनयान स्वरूप। बौद्ध मत के बाद कुछ देशों में इस्लामी मत के अनुयायी हैं। कुछ देशों में हिन्दुओं की संख्या भी पर्याप्त है और पिछली एक दो शताब्दियों से चर्च के अनुयायियों ने काफी लोगों को अपने खेमे में शामिल किया है।

दक्षिण पूर्व एशिया में ही विश्व का सबसे बड़ा मंदिर अंगकोरवाट है जो लगभग पांच सौ एकड़ में फैला हुआ है। महात्मा बुद्ध के इतने बड़े-बड़े और भव्य मंदिर स्यामदेश, लाओस और वियतनाम में खड़े हैं कि उनका सौंदर्य अभिभूत करता है। इंडोनेशिया के कुछ द्वीपों में तो हिन्दू जीवन पद्धति परंपरागत तरीके से प्रचलित है और वहां के मंदिरों की शोभा देखते ही बनती है।

इस क्षेत्र के सभी देशों में रामायण कथा किसी न किसी रूप में प्रचलित है। थाईलैंड की रामकियेन अर्थात् राम कीर्ति तो सारी दुनिया में ही प्रसिद्ध है। थाईलैंड की राजधानी पहले अयोध्या में थी बाद में उसे बैंकॉक में लाया गया। थाईलैंड के अनेक स्थानों का संबंध राम की ऐतिहासिक गाथा से जोड़ा जाता है। यहां तक कि थाईलैंड का वर्तमान चक्री वंश अपने आपको राम की वंश परंपरा से ही जोड़ता है। वर्तमान राजा भूमिबल अतुल्य तेज अपने नाम के आगे राम नवम शब्द का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार लाओस में कुछ प्रक्षिप्त अंशों के साथ रामायण प्रचलित है। इंडोनेशिया में कक रामायण का बोलबाला है। यहां तक कि इस्लामी प्रभाव वाले मलेशिया में भी परिवर्तित रूप में रामायण प्रचलित है। यहां एक बात और ध्यान में रखनी होगी कि दक्षिणपूर्व एशिया में रामायण केवल पांडुलिपियों, पुस्तकालयों या आजायबघरों में ही सुरक्षित नहीं है बल्कि

वहां के लोक साहित्य, लोक गाथाओं और लोक नाट्य परंपराओं में स्पंदित होती है। राम कथा वहां के लोक मानस से जुड़ी हुई है और अनेक सार्वजनिक उत्सवों और कार्यक्रमों में राम का गायन और मंचन होता है।

इसी प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया में संस्कृत भाषा के हजारों शब्द तत्सम और तद्भव रूपों में प्रचलित हैं। बैंक के लिए धनागार, स्कूल के लिए पाठशाला या विद्यालय का प्रचलन आम देखा जा सकता है। केवल उदाहरण भर के लिए इस्लामी देश मलेशिया की भाषा में प्रचलित संस्कृत शब्दों की कुछ बानगी प्रस्तुत है –

संस्कृत शब्द	*मलय शब्द*	*संस्कृत शब्द*	*मलय शब्द*
श्रृगाल	सरीगात	श्रीनगरी	सैरीनगरी
श्रीमुख	सरमुख	भाषा	भासा
सन्ध्या	सन्जा	उपवास	पुआस
सन्धिकाल	सन्जाकाल	स्वामी	सुआमी
रथ	रत	ऋषि	रेसि
परीक्षा	पेटेक्सा	सहोदर	सोदर
शिक्षा	सिक्सा	श्लोक	सिलोक

इसी प्रकार कंबोडिया के कुछ प्रसिद्ध नगरों के नाम देखे जा सकते हैं :
ततन्दपुर, ताम्रपुर, आदमपुर, ध्रुवपुर, धन्वीपुर, ज्येष्ठपुर, विक्रमपुर, उग्रपुर, यशोधरपुर इत्यादि।

कंबोडिया देश की उत्पत्ति के संबंध में डा. सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ दक्षिण पूर्वी और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति में लिखा है कि – इस देश के नामकरण के संदर्भ में दो कथाएं प्रचलित हैं, एक के अनुसार तो प्राचीन काल में भारत में कम्बु स्वायम्भव नाम का एक राजा राज्य करता था। पत्नी की मृत्यु के बाद वैराग्य उत्पन्न होने पर वह सब कुछ छोड़कर अज्ञात देश चला गया और घटनावश उसका विवाह वहां नागवंशी राजकन्या से हो जाता है। बाद में वही वहां का राजा बन गया और उसी के नाम पर वह देश कम्बुज कहलाया। दूसरी कथा के अनुसार इन्द्रप्रस्थ के राजा ने नाराज होकर अपने पुत्र को निर्वासित कर दिया था। वह कोकलोक नामक राज्य में जाकर वहां का राजा बन गया। घटनावश उसका विवाह भी वहां एक नागकन्या से हो गया। वही प्रदेश बाद में 'कम्बुज' नाम से प्रसिद्ध हुआ। दोनों का मूल भाव एक सा ही है कि राज्य की स्थापना भारतीय द्वारा हुई और इस देश में नागवंशी रहते थे।

इसी प्रकार चंपा अथवा वियतनाम के भारतीय संबंधों की चर्चा करते हुए रघुनंदन प्रसाद शर्मा ने *विश्व व्यापी भारतीय संस्कृति* में लिखा है – कम्बुज की तरह चंपा में भी राज-काज तथा शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा रही है। संस्कृत भाषा के चंपा में लगभग सौ अभिलेख मिले हैं। ये सभी ऐसी लिपियों में उत्कीर्ण हैं जो भारतीय हैं। इन्हें पढ़कर ये स्पष्ट हो जाता है कि चंपा में सभ्रांत वर्ग अपने दैनिक कार्य में संस्कृत का प्रयोग किया

करता था। वियतनाम में चारों वेद, रामायण, महाभारत, पुराण, षड्दर्शन, व्याकरण, काव्य आदि संस्कृत वाङ्मय के सभी अंगों का अध्ययन होता था।

इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता के आसपास दिल्ली से अधिक हिन्दू विश्वासों को मूर्तिमान देखा जा सकता है। यहां अनेक सरकारी इमारतों के नाम संस्कृत भाषा में ही हैं। यहां के रक्षा मंत्रालय को युद्धगृह और खेल मंत्रालय को कृड़ा भक्ति कहा जाता है। रक्षा मंत्रालय के द्वार पर लिखा हुआ है चतुर्धर्म एकाकरम। यही नहीं यहां के नोटों पर गणेश जी का चित्र होता है। केन्द्रीय बैंक के सामने एक विशाल रथ पर श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए दिखाए गए हैं।

आचार्य रघुवीर ने टिप्पणी करते हुए कहा था – इंडोनेशिया के लोग, विशेष रूप से सुमात्रा, जावा और बाली के निवासी शिव, विष्णु और तारा आदि का अनुसरण करते हुए अच्छे हिन्दू बने रहे। ये द्वीप हिन्दू मंदिरों से ठसाठस भरे पड़े हैं। उनकी भव्यता अनुपम और कला अद्वितीय है। ***डा. राधाकृष्णन ने एक बार अपने भाषण में बताया था कि उन्हें एक सैमीनार में इंडोनेशिया के एक प्रोफेसर मिले जिन्होंने अपने शोध पत्र का प्रारंभ मंगलाचरण से किया और साथ ही गणेश और सरस्वती की वंदना की। डा. राधाकृष्णन ने जब उस प्रोफेसर से पूछा कि उन्होंने मुस्लिम होते हुए भी सरस्वती और गणेश की वंदना किस लिए की है, तो उनका उत्तर था – हमारे धार्मिक विश्वास कुछ भी हों, सरस्वती और गणेश तो हमारी संस्कृति का अंग हैं।***

जावा के मंदिर कला और सौन्दर्य के अनुपम नमूने हैं। गुप्तकालीन मंदिर शैली में बने हुए ये मंदिर आज भी अपनी कथा स्वयं कहते हैं। चंडीसेवु, चंडीपवान, बोरोबुदुर, लारजोग रंग के मंदिरों की ब्रह्मा, विष्णु और महेश की मूर्तियां मानों सजीव हो उठी हैं। जावा के छाया नाटकों की कथा आमतौर पर राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम इत्यादि पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती है। बाली द्वीप में मंदिर में जब भगवान को पुष्प अर्पित किया जाता है तो निम्न मंत्र पढ़ा जाता है –

ओम् ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर देवा/जीवात्मानाम् त्रिलोकानाम्
सर्व जगत्प्रतिष्ठानम्/सर्व रोग विमूर्चि (धि) तम्
सर्व रोग विनासनम्/विध्य देस विनासनम्/ओम् नमो शिवाय।

ऊपर के इस विवेचन से स्पष्ट है कि दक्षिण पूर्व एशिया सांस्कृतिक रूप से बृहत् भारत का अंग प्रतीत होता है। इन देशों के लोगों के लिए अब यह संस्कृति भारतीय संस्कृति नहीं बल्कि थाई संस्कृति, मलेशियाई संस्कृति, इंडोनेशियाई संस्कृति, कंबुज संस्कृति, लाओस संस्कृति या फिर वियतनामी संस्कृति ही है। भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के ये देश मिलकर अखंड संस्कृति के एक क्षेत्र की रचना करते हैं। इन देशों से भारतीय संबंध समुद्र के रास्ते से भी जुड़े हुए थे और थलमार्ग से भी। परंतु लगता है जब भारत पर इस्लामी आक्रमण शुरू हुए और धीर-धीरे इस्लामी आक्रांताओं ने देश के सत्ता

सूत्र संभालने शुरू कर दिए तो दक्षिण पूर्व एशिया से भारतीय संवाद माध्यम टूटने लगे। अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए भारतीयों ने भी अपने खोल में सिमटना शुरू कर दिया। शायद इतिहास के इन्हीं काल खंडों में हिन्दुओं के लिए सागर यात्रा निषेध के प्रावधान आकार लेने लगे होंगे। भारत का दक्षिण पूर्व एशिया से केवल संवाद तंत्र ही भंग नहीं हुआ बल्कि अनेक स्थानों पर दक्षिण पूर्व एशिया के देश भी इस्लामी आक्रमणों का शिकार हो गए। मलेशिया और इंडोनेशिया में इस्लाम का रथ इन्हीं काल खंडों में आया होगा।

सोलहवीं सत्रहवीं सदी के आसपास विश्वभर में इस्लाम की आभा और शक्ति मद्धम पड़ने लगी थी। इतिहास के इस मोड़ पर यूरोपीय शक्तियों ने प्रवेश किया। चीन और भारत दोनों एक साथ ही उनके षड्यंत्रों के शिकार हुए। भारत तो प्रत्यक्ष ही गुलाम हो गया और चीन यूरोप की राजनीति की शतरंज पर हार गया। इस प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया या हिंद चीन के लिए भारत और चीन दोनों ही अप्रासंगिक हो गए और दक्षिण पूर्व एशिया में भी यूरोप की विभिन्न जातियों ने अधिकार स्थापित कर लिया। भारत का इस क्षेत्र से संवाद तंत्र और भी बुरी तरह छितर गया। वैसे भी अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारत और चीन दोनों की ही जो बलहीन स्थिति उस समय उभरी थी उसने दोनों देशों के सम्मान को दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की नजर में कम ही किया। वैसे भी यूरोपीय नीति और षड्यंत्रों के कारण भारत, चीन और दक्षिण पूर्व एशिया में यूरोपीय संस्कृति नए रोल मॉडल के रूप में उभरने लगी। प्रेरणा के नये केन्द्र विकसित होने लगे और समाज का नेतृत्त्व करने वाला वर्ग यूरोप के हाथों मानसिक पराजय स्वीकार कर उन्हीं के मॉडल को अपना कर गौरवांवित होने लगा।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात इस पूरे क्षेत्र का परिदृश्य एकाएक बदलने लगा। भारत से अंग्रेज शासक हट गए। चीन में साम्यवादी क्रांति हुई। दक्षिण पूर्व एशिया के दूसरे देशों ने भी यूरोपीय जातियों के शासन से मुक्ति पाई। परंतु दासता के लंबे कालखंड के कारण भारत के नेतृत्व वृंद के संवाद सूत्र मानसिक रूप से अमेरिका और यूरोप से जुड़ गए थे। इसी प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के संवाद सूत्र भी मानसिक रूप से यूरोपीय देशों से जुड़ चुके थे। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक स्थिति यह हो गई कि भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के देश एक दूसरे के पड़ोसी होते हुए भी संवादहीनता की स्थिति में आ गए। इसके विपरीत सात समुद्र पार के यूरोपीय देशों से उनके संवाद तंतु दृढ़ता से जुड़ गए।

परंतु भौगोलिक दृष्टि से भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों का आपस में जो संबंध था उसको भला कौन रोक सकता था ? चीन साम्यवाद के भेष में एक सशक्त राष्ट्रवादी देश के रूप में उभर रहा था। उसकी इस शक्ति से दक्षिण पूर्व एशिया के देशों का चिंतित होना स्वाभाविक ही था। परंतु मूल प्रश्न यह था कि क्या चीन के इस भय से भारत दक्षिण पूर्व एशिया के देशों को मुक्ति दिला सकता था ? १९६२ के भारत-चीन

युद्ध के उपरांत इसकी संभावनाएं और भी क्षीण हो गईं थीं। अत: दक्षिण पूर्व एशिया के देश भयमुक्ति के लिए और भी अधीरता से अमेरिका की ओर भागने लगे। इस प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया धीरे-धीरे चीन और अमेरिका के प्रभाव वाला क्षेत्र बन गया। ***भारत सरकार और भारत शासक वर्ग ने पड़ोसी देशों से अपने संबंधों को सुदृढ़ बनाने के लिए जिन कारकों का निर्धारण किया उसमें संस्कृति को कोई महत्व नहीं दिया गया क्योंकि यह संस्कृति विदेशों में हिन्दू संस्कृति के नाम से जानी पहचानी जाती है और भारत सरकार की दृष्टि में हिन्दू संस्कृति साम्प्रदायिकता की पर्यायवाची है।*** विदेशी संबंधों का दूसरा आधार देश का सशक्त होना है। दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के लिए भारत और चीन के परिप्रेक्ष्य में भारत, चीन के मुकाबले उन्नीस ही ठहरता था। सांस्कृतिक आधार पर भारत दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से संबंधों का सुदृढ़ीकरण करना नहीं चाहता था और अपने राष्ट्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में दक्षिण पूर्व एशिया के देशों को भारत की आवश्यकता नहीं थी। शायद यही कारण रहा कि कोलकाता-रंगून-बैंकॉक की दूरी कम होते हुए भी बढ़ गई और बैंकॉक-न्यूयार्क के बीच की दूरी के सातों समुद्र एकाएक सिमट गए।

मुख्य प्रश्न यह है कि शीत युद्ध के अंत के बाद नये परिदृश्य में भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के बीच पुराने सांस्कृतिक सेतुओं की नये सिरे से मुरम्मत की जाए और नये सेतुओं का निर्माण किया जाए और पुरानी पड़ गई नसों को पुन: बल प्रदान किया जाए। इसके लिए एक संवेदनशील सांस्कृतिक नीति बनानी होगी। जिसके कुछ मुख्य बिंदु निम्न हो सकते हैं:

१. भारत को चीन के मुकाबले अपने आप को सुदृढ़ आधार पर स्थापित करना होगा। ऐसा प्रभाव नहीं होना चाहिए कि एशिया में चीन क्षेत्रीय शक्ति के रूप में स्थापित हो गया है और भारत उससे पिछड़ गया है। पिछले दिनों भारत सरकार ने चीन के साथ बातचीत करने में जिस आतुरता और व्यग्रता का प्रदर्शन किया है उससे भारत की स्थिति कमजोर पड़ती है। कमजोर भारत सांस्कृतिक स्तर पर दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में उत्साह का संचार नहीं कर सकता, क्योंकि कमज़ोर राष्ट्र की संस्कृति से गौरव भावना का उदय नहीं होता बल्कि हीन भावना का संचार होता है। इसलिए भारतवर्ष को दक्षिण पूर्व एशिया में सांस्कृतिक सेतुओं की रचना करने के लिए समर्थवान बनना होगा।

२. दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के साथ भारत को स्थल मार्ग से परिवहन व्यवस्था को पुन: स्थापित करना होगा। वर्तमान में यह परिवहन व्यवस्था बिल्कुल ही ठप्प है। ब्रह्म देश के रास्ते सड़क और रेल मार्ग का निर्माण किया जा सकता है। जिसके माध्यम से थाईलैंड से होकर भारत सारे दक्षिण पूर्व एशिया से स्थल मार्ग से पुन: जुड़ सकता है और क्योंकि परिवहन के इस माध्यम पर वित्तीय खर्च बहुत कम आएगा इसलिए भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के बीच लोगों का आना जाना बहुत बड़ी संख्या में बढ़ेगा। इस आने जाने से निश्चय ही दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संबंध दृढ़ होंगे और उनमें एक नई जीवंतता और

चेतना का संचार भी होगा। यहां यह ध्यान में रखना होगा कि सांस्कृतिक संबंधों के सूत्रों का सुदृढ़ीकरण सामान्य जन के स्तर पर ही अच्छी तरह होता है।

३. भारतीय विश्वविद्यालयों में उन देशों का इतिहास ही पढ़ाया जाता है जो भारत से बहुत दूर हैं। इन पाठ्यक्रमों में या यूरोपीय देश हैं या फिर अमरीकी देश। लेकिन जो हमारे निकटतम पड़ोसी देश हैं और जिन का इतिहास भारतीय इतिहास से मिलकर एक अखंड इतिहास की रचना करता है उसका भारतीय पाठ्यक्रम में कहीं भी स्थान नहीं है। भारत के और दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक इतिहासपुरुष सांझे हैं। घटनाएं एक दूसरे से गुम्फित हैं और इन सभी का इतिहास मिलकर एक समग्र इतिहास बनता है। इस प्रकार से विदेशी आक्रान्ताओं के खिलाफ संघर्ष का इतिहास भी भारत और दक्षिण पूर्व एशिया का सांझा इतिहास है। एक बार पुन: सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए जरूरी है कि यह समग्र इतिहास भारतीय पाठ्यक्रमों का इतिहास बने ताकि बिल्कुल पड़ोस में स्थित ये देश भारतीय युवा के लिए अनजाने न बन जाएं। इसी प्रकार यह भी प्रयास किया जाना चाहिए कि दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में भी पाठ्यक्रमों में भारतीय इतिहास का समावेश किया जाए। फिलहाल भारत और दक्षिण पूर्व एशिया में मानविकी और समाज विज्ञान संकायों में जो पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है वह लगभग वही है जो यूरोपीय विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है।

४. दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के हजारों छात्र भारतीय महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते हैं। दुर्भाग्य से भारत सरकार की उनके प्रति कोई सांस्कृतिक नीति नहीं है। वे इस देश में रहकर न तो कोई भारतीय भाषा सीख पाते हैं और न ही उनका भारतीय जनजीवन से सजीव और जीवंत संपर्क हो पता है। भारतीय मेधा, भारतीय समाज विज्ञान इन सब से वे नहीं जुड़ते। इसलिए अनेक वर्ष भारत में रहने के बाद भी वे यहां के सांस्कृतिक प्रभावों से प्राय: अनजान बने रहते हैं। वस्तु स्थिति तो यह है कि वे भारतीय इतिहास और उनके अपने देश के इतिहास व संस्कृति के बीच बहने वाली समान धारा के स्रोतों से भी अपिरिचित रहते हैं। इस स्थिति को बदलने की आवश्यकता है।

५. दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की भाषाओं के विभाग भी भारतीय विश्वविद्यालय में खोले जा सकते हैं और इसी प्रकार भारतीय भाषाओं के विभाग दक्षिण पूर्व एशिया के विश्वविद्यालयों में खोले जाने की आवश्यकता है। भारत सरकार को चाहिए कि इसके लिए प्राथमिकता के आधार पर एक निश्चित बजट का प्रावधान किया जाए।

दक्षिण पूर्व एशिया और भारत दोनों ही सुदृढ़ सांस्कृतिक सूत्रों में बंधे हैं, इसमें कोई संशय नहीं है परंतु भूतकाल के सेतुओं के सहारे बहुत लम्बी यात्रा नहीं का जा सकती। इसलिए जरूरी है कि नई सांस्कृतिक नीति का निर्धारण किया जाए ताकि ये संबंध पुन: प्रफुल्लित हो सकें और पश्चिम की अपसंस्कृति के खिलाफ दोनों की संयुक्त लड़ाई बन सके।

निदेशक, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
क्षेत्रीय केन्द्र, धर्मशाला, हि.प्र.

गोधन

पाणिनि की अष्टाध्यायी में गोधन

• डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

गाय और बैल के लिए भाषा में धेन्वनडुह शब्द प्रयुक्त होता था। सम्भवत: उसका वाच्यार्थ दूध देने वाली गाय और सग्गड़ खींचने वाले बैल के लिए था। दोनों का एक साथ होना किसान के कल्याण सम्पन्न जीवन का द्योतक था। आशीर्वाद देने के लिए उपयुक्त वाक्य था '***स्वस्ति भवते सगवे सवत्साय***' (६।३। ७३ पर कात्यायन)। व्रज, गोशाल (४।३।३५), गोष्ठ (८।३।९७) और गोष्पद भूमियों का गाय के जीवन से विशेष सम्बन्ध था। (६।१।१४५, गोभि: सेवितो देश:, काशिका)। गायों के समूह के लिए गोत्रा शब्द है। (४।२।५१) जो वैदिक गोत्र शब्द का स्मरण दिलाता है। ***गोत्र का मूल अर्थ कई परिवारों की समान गोशाला थी***। पाणिनिकालीन भाषा में गोत्रा के लिए दो नूतन शब्द गव्या (४।२। ५०) और आधेनव (४।२। ४७) प्रयुक्त होने लगे थे।

ग्वालों के लिए गोपाल शब्द चल गया था। तन्तिपाल (६।२। ७८) उन अधिकारियों को कहते थे जो राज्य की गायों के बड़े-बड़े झुण्डों की देखभाल करते थे। महाभारत में तन्तिपाल शब्द का उल्लेख इसी अर्थ में है। जब ग्वाले का नौजवान लड़का स्वतन्त्र रूप से जंगल में गायों को चरा लाने की आयु प्राप्त कर लेता तो उसे अनुगवीन कहते थे। (अनुग्वलंगामी, (५।२। १५, अनुगवीनो गोपलक:)। जैसे वय:प्राप्त क्षत्रिय कुमार के लिए कवचहर शब्द था वैसे ही गोपाल के पुत्र के लिए अनुगवीन। आगवीन कर्मकर वह मजदूर था जो गाय मिल जाने तक काम करे। (यो गवाभृत: कर्म करोति आ तस्य गो: प्रत्यर्पणात्—काशिका ५।२। १४, आगवीन:)। इस का ब्यौंत यों बैठता है। माँ का दूध छोड़ देने पर बछिया किसी कमेरे को चराई पर दे दी जाती है। यदि वह अपने घर पर चरावे तब गाय के बिआने पर उसका मूल्य कूतकर आधा-आधा कर दिया जाता है। दोनों में से कोई आधा मूल्य देकर गाय ले लेता है। इसे अधवट चारई कहते हैं। दूसरा तरीका यह है कि चराने वाला मालिक के यहाँ ही काम करता रहता है। जब गाय बिआ दी जाती है तो उसकी भृति के बदले में वह गाय उसी को दे दी जाती है। यही आगवीन कहलाता था।

गौ की जीवन-गाथा

प्राचीन भारतीय भाषा में गौ से सम्बन्धित विविध शब्दावली का होना स्वाभाविक है। गाय के जन्म और जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ उन-उन शब्दों से प्रकट की गई हैं। ओसर बछिया जो हरी होने, फलने या वरदाने के लिए तैयार हो, उपसर्या कहलाती थी।

(उपसर्या काल्या प्रजने, ३।१।१०४), अर्थात् वह प्रजनन या बूने–साहने के लिए काल प्राप्त समझी जाती थी। उसका पहला बरदाना उपसर कहा जाता था (३।३।७१)। बछिया तीन बरस की या तिबरसी होने पर पूरी पट्ठी मानी जाती थी। विराट पर्व में उसे त्रिहायनी माहेयी कहा है (विराट, १६।६, पूना संस्करण)। ग्याभिन होने के बाद यदि वह बह जाय या तू-निछा जाय तो उस चूई हुई को बेहत् कहते थे (२।१। ६५, बेहद् गर्भपातिनी, काशिका) ग्याभिन होने पर जो ठहर जाती थी वह गर्भ पूरा हो जाने पर पुड़े तोड़ने लगती थी, जिससे सूचित होता था कि वह आजकल में बिआने वाली है। उसकी इस अवस्था का द्योतक अद्यश्वीना (५।२।१३) शब्द था। वैदिक भाषा में इसे ही प्रवय्या कहते थे (६।१। ८३, भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि, वत्सतरी प्रवय्या, काशिका)। बिआने के बाद पहलवन बिआई या पहलौटी गाय गृष्टि कहलाती थी (२।१।६५)। पाणिनि ने महागृष्टि शब्द का उल्लेख किया है (६।२।३८)। यह उस प्रकार की गौ थी जो एक ब्यांत के बाद लगभग तब तक दूध देती है, जब तक दूसरी ब्यांत न करे। इसी के लिए वैदिक भाषा में नैत्यिकी शब्द चलता था। स्वाभाविक है कि ऐसी गाय बहुत धन्य और शीलवती मानी जाती थी। इसे ही मध्यकालीन संस्कृत में नित्यवत्सा (हेमचन्द्र, अभिधानचिन्तामणि ४।३।३६) और व्रज भाषा में नैचकी कहा गया है। इस प्रकार जो गाय बरस-बरस या बरस व्यावर होती थी, उसके लिए पाणिनिकालीन भाषा में समांसमीना, यह सुन्दर शब्द चल गया था (समां समां विजायते, ५।२।१२)। पतंजलि ने ऐसी गौ के विषय में अपने युग की कल्याणी भावना को प्रगट करते हुए लिखा है – गौरियं या समां समां विजायते। गोतरेयं या समां समां विजायते स्त्रीवत्सा च (भाष्य, ५।३। ५५)। 'वह गौ धन्य है जो बरस-बरस पर बिआती है। उससे भी उत्कृष्ट वह है जो बरस-बरस पर बिआती है और बछिया जनती है।' जब तक गाय दूध देती रहे वह धेनु कहलाती थी (२।१। ६५), जिसे आज भी हिन्दी में धेन कहते हैं। इसे ही कात्यायन ने अस्तिक्षीरा कहा है (२।२।२४, वा० २१)। बिआने के छह सात महीने बाद दूध गाढ़ा और कम होने लगता है और गाय बष्कयणी हो जाती है (२।१।६५, हिन्दी बखैनी या बाखड़ी)। जिस गाय को उसके दूध से ऋण पाटने के लिए बन्धक रख दिया जाय वह धेनुष्या कहलाती थी।

बैल

भारतीय किसान के जीवन में बैल का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसकी झाँकी संस्कृत भाषा और हिन्दी भाषा के उन सैंकड़ों शब्दों से मिलती है, जो बैलों के रूपरंग, आयु, स्वभाव और दु:ख सुख पर प्रकाश डालते हैं। पाणिनी की अष्टाध्यायी में भी ऐसे सार्थक शब्दों का गुच्छा सुरक्षित है। छोटा दूध पीता बच्चा शकृत्करि कहलाता था (३।२।२४, स्तम्बशकृतोरिल्) जिसे वैदिक भाषा में अतृणाद कहते थे (बृहदारण्यक उप० १।५।२)। फिर वही वत्स या बछड़ा कहलाता था। बछड़ों का समूह वात्सक था। जब गायें जंगल में चली जातीं तो जिस विशेष स्थान में बछड़े रखे जाते उसे वत्सशाला कहते थे

(४।३।३६)। कुछ दिन बाद जब बछड़ा दूध पीने से हट जाता तब उसके गले में डेंगुर बांध कर उसे कुछ दूर चरने के लिए छोड़ देते थे। एक अवस्था में वह प्रासंग्य कहलाता था। (तद्वहति रथयुगप्रासंगम्, ४। ४। ७६, प्रासंग = बछड़े के गले में बाँधा हुआ खटखटा या डेंगुर)। लगभग दो बरस का बछड़ा दित्यवाह् कहा जाता था। (७।३। १, वैदिक इण्डेक्स, १।३५९)। उसे निकालने के लिए जो लकड़ी या लट्ठे का खटखटा बनाया जाता है, सम्भवत: उसकी संज्ञा दित्य थी। उसमें जोतकर जिस बछड़े को निकालते थे उसकी संज्ञा दम्य होती थी। पहले वत्स, फिर दम्य और अन्त में वह वलीवर्द बनता था (बालो युवा वृद्धो वत्सो दम्यो बलीवर्द इति, भाष्य, १। १। १, वा० १३)। चतुर किसान अपने बछड़ों में से पहले ही यह पहचान लेते हैं कि किसे साँड़ या बिजार बनाना है। ऐसे चुने हुए बछड़ों को आर्षभ्य कहा जाता था (ऋषभोपानहोर्य:, ५। १। १४)। ऐसे बछड़े के चौंखने के लिए किसान शुरू से ही गाय के थनों में अधिक दूध छोड़ देता है और प्राय: दो थनों का दूध उन्हें देता है। कभी-कभी तो ऐसे बछड़े को अपनी माँ का पूरा दूध ही मुखामेल या मुहछुट्ट पीने दिया जाता है। इस प्रकार ऋषभ बनने वाला बछड़ा जब कुछ बड़ा होकर बढ़ने लगता तब उसे जातोक्ष कहते थे (५।४। ७७)। जातोक्ष बधिया नहीं किया जाता था। वही जब अपने पूरे यौवन पर आता है और उसकी गर्दन पर टाट लोटने लगती तो वह पूर्णकाकृत् कहलाता था (५।४। १४८–१४९)। उस यौवनकाल में उसे महोक्ष यह सम्मानित पद मिलता था (५। ४। ७७)। उस पूरे सांड या बिजार को प्रत्येक जनपद में पर्याप्त आदर की दृष्टि से देखते थे। ***जब वह जंगल में खड़ा हुआ दड़ूकता और मठारता तो ऐसा ज्ञात होता मानो सारे जनपद की गायों का सौभाग्य उस महोक्ष में मूर्तिमन्त हो उठा है।*** इसके बाद जब उसकी उमर ढलने लगती और यौवन बीत जाता तब उसे वृद्धोक्ष कहते थे (४।५। ७७)। इस प्रकार असमर्थ बने हुए ऋषभ को भाषा के द्वारा और अधिक सम्मान देने के लिए ऋषभतर कहा जाता था (वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे, ५।३।९१)। अब यह सांड ऋषभ नहीं ऋषभतर हो गया – यह कथन एक ओर तरप् प्रत्यय द्वारा उसका अधिक सम्मान करता है तो दूसरी ओर उसके तनुत्व या असमर्थतता का सूचक है। इसी प्रकार जिस बछड़े को शकट आदि में जोतने के लिए बधिया करते थे वह पूरा जवान होने पर उक्षा और अधेड़ अवस्था का होने पर उक्षतर कहा जाता था (५।३।९१)। उक्षतर से ही हिन्दी खैरा शब्द बना है (उक्षतर-उक्खयर- उखइर-खइरअ-खैरा)।

बछड़ों का दांतना और उनकी आयु

दो से ढाई वर्ष की आयु के बीच में बछड़े के दूध के दांत गिरकर दो पक्के दांत निकल आते हैं, तब वह द्विदन् कहा जाता है। जिसके दूध के दांत न टूटे हों उसे भाषा में उदन्त कहते हैं। तीन वर्ष की आयु में वह चर्तुर्दन् या चौदन्ता होता है (वयसि दन्तस्य दतृ, ५। ४। १४१)। इस समय उसकी नाक छेदकर नाथ डाल दी जाती है और तब से वह नाथहरि हो जाता है (३।२।२५)। लगभग साढ़े तीन वर्ष की आयु में दो दाँत और निकल

आते हैं, तब वह षोडन् (हिन्दी छद्दर) कहा जाता है। पूरे चार वर्ष की आयु में सब दांत भर जाते हैं और तरुण बैल अष्टदन् हो जाता है। जिसके एक दांत कम रहे उसे सप्तदन् (हिन्दी सद्दर) कहते थे।

बैल मोल लेते और बेचते समय दाँत देखकर उसकी आयु का अनुमान किया जाता है। ऐसे ही सींगों की नाप से भी आयु की पहचान होती है। खुब्भ या टाट की वृद्धि भी आयु की सूचक है। (ककुदस्यावस्थायां लोपः, ५। ४। १४६) उसके लिए भाषा में तीन शब्द प्रचलित थे, असंजातककुत् (बालकः), पूर्णककुत् (मझली उमर का), उन्नतककुत् (वृद्धवया)। कामकाजी बैलों को रथ गाड़ी, तांगा, हल आदि में जोतना हो उसी के अनुसार उनका अलग अलग वर्गीकरण करके दाने-चारे और टहल का प्रबन्ध किया जाता था। रथ के लिए पूरी नाप का ठाढा बैल पसन्द किया जाता था। हल और गाड़ी में चाहे जैसा भी जोत लेते थे। शौकीन लोग रथ के बैलों को पालने में काफी ध्यान देते थे, क्योंकि उस समय बैलों के रथ की सवारी सबसे अधिक सम्भ्रान्त मानी जाती थी (वाह्ये वाह्यं तथा गवां, शान्तिपर्व १८६।२०)। रथ खींचने वाला बैल रथ्य (४। ४। ७६), जुवा खींचने वाला युग्य (४।४।७६, जो कुएं से सिंचाई करता था), बोझ ढोने वाला धुर्य या धौरेय (४। ४। ७७ ध्रुरो यड्ढको), पूरी गाड़ी या सग्गड़ खींचने वाली शाकट (४।४।८०, शकटादण), और हल खींचने वाला हालिक या सैरिक कहलाता था (हलसीराट्ठक् ४। ४। ८१)। गाड़ी में केवल एक ओर जुतने का अभ्यस्त बैल एकधुरीण (एकधुराल्लुक् च, ४। ४। ७९) और दोनों ओर जुतकर जुआ खींचने वाल सर्वधुरीण (खः सर्वधुरात्, ४। ४। ७८) कहलाता था। पतंजलि ने लिखा है, 'वह अच्छा बैल है जो छकड़ा खींचता है। पर जो छकड़े और हल दोनों में चलता है वह और भी बढ़िया है (गौरयं यः शकटं वहति गोतरोऽयं यः शकर्टं वहति सीरश्च, ५। ३। ५५)।

बैलों की प्रसिद्ध नस्लें

पाणिनी ने साल्व जनपद की नस्ल के बैलों को साल्वक कहा है (गोयवाग्वोश्च, ४।२।१३६)। उत्तरी राजस्थान के बीकानेर से अलवर तक फैले हुए बड़े भूभाग का नाम साल्व था। मेड़ता और जोधपुर इलाका भी उसी के अन्तर्गत था। इस प्रदेश के नागौरी बैल आज तक प्रसिद्ध हैं

पतंजलि ने वाहीक के बैलों का (१। ४। १०। ८, वा० ७), और काशिका ने कच्छी बैलों का (सूत्र ४। २। १३४ के प्रत्युदाहण रूप में) और रंकु जनपद के रांकव और रांकवायण बैलों का उल्लेख किया है। काठियावाड़ में रैवतक पर्वत की तलहटी में गायें अत्यन्त दुधारु और सुहावनी एवं बैल बहुत ही तगड़े और चलने वाले होते हैं। यही प्राचीन कच्छी-काठियावाड़ी नस्ल होनी चाहिए जिसका रंग सिंह के समान नेत्रसुभग होता है। रांकव बैलों की ठीक पहचान अभी निश्चित नहीं है।

गाय के गोबर से आंगन लीपल...

• मृदुला सिन्हा

दादी हुक्का पीती थीं। हुक्का पीते-पीते वह गीत भी गा लेती थीं। मेरे आंगन में छः चाचियां, पांच भाभियां और हम सब बहनें थीं। उनमें से कोई भी दादी का हुक्का भरकर ला देती। पर दादी हिदायत देना नहीं भूलतीं– 'याद है न! गाय के गोबर के गोइठी (उपला) वाली आग ही सुलगाना।'

मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। गोबर तो गोबर है। गाय के गोबर की क्या विशेषता होगी? पर्व-त्योहार पर आंगन लीपते समय भी दादी गाय का गोबर ही मंगवाती थीं। और तो और दादी, मां और सभी चाचियां एकादशी व्रत करती थीं। दूसरे दिन किस चीज से पारन किया जाएगा, पण्डित जी बताकर जाते थे। एक एकादशी का पारन गाय के गोबर, दूसरी का गो-मूत्र, तीसरी का गो-दूध, चौथी का गो-दही, और पांचवीं गो-घी से। दूध, दही और घी से पारन तो समझ में आया। पर गो के गोबर से पारन करना मेरी तत्कालीन समझ से परे था। मैंने पूछा– 'दादी! गाय का गोबर आप कैसे खाएंगी?'

-'अरे, खाना क्या है! जीभ में थोड़ा सटा लूंगी।' और दादी, मां, चाचियों ने ऐसा ही किया। गाय-बथान से गोबर मंगवाया गया। उन सब ने तुलसी के पत्ते के बीच थोड़ा-थोड़ा रखकर मुंह में डाला।

थोड़ी और बड़ी हुई मैं। दादी और मां द्वारा व्रत-त्योहार की कहानी सुनाते हुए महिलाओं के झुण्ड के बीच बैठ जाती। अनेक कथाएं जिनमें गाय भी बोलती, आशीष देती थी। शादी-विवाह, उपनयन संस्कार तथा पर्व त्योहारों के गीतों में गाय के गोबर की प्रधानता थीं–

गाय के गोबर हे सीता आंगन लीपल,
गज मोती चौका पुराऊ हे।

सूर्य देवता की पूजा(छठ) के गीतों में गाय की महिमा का विस्तृत वर्णन होता था। एक गीत में व्रती महिला और सूर्य का वार्तालाप होता है। व्रती महिला पूछती है–

आज सूरज देव, जल्दी डूबली
रात भइल सूरज रहब रऊरा कहंवा?

सूर्य देव कहते हैं–

गाय के गोबर लीपल आंगन उहंवा,
गाय के दूध स्नान भेल उहंवा,
गाय के घी से हवन भेल उहंवा।

दादी जैसा गाती थीं, वैसा ही व्यवहार करती थीं। प्रति सुबह गाय की पूजा

करतीं। उसे धूप दिखाती। मेरे विवाह के पूर्व गाय को एक बछड़ा हुआ था। उन्होंने ही मेरा कन्यादान किया और अपनी गाय और बछड़ा मेरे ससुराल भेज दिया।

किसी ने पूछा था—'अब आपका घर-संसार कैसे चलेगा?' सचमुच दूध, दही, घी ही नहीं खेत में गोबर के लिए गाय आधारित तो था उनका जीवन। हुक्का में कस मारती हुई दादी ने कहा था—'मेरे पास इसी गाय की एक बछिया है। वह भी गाभिन(गर्भवती) है। दो माह बाद ही बच्चा देगी। मेरा घर भी भरा रहे और मेरी पोती का भी। इसीलिए गाय दान कर दी। इस गाय के नाती-पोतों से इसका परिवार पलता रहेगा। बछड़े खेती करेंगे।

कितनी दूर की सोचती थीं दादी। घर-परिवार का आर्थिक आधार थीं गायें। एक बार मैंने दादी से पूछा—'दादी! आपके गीतों में गाय के गोबर का इतना महत्त्व क्यों है? और आप के जीवन में भी'।

दादी ने कहा था—'पहले यह चिलम भर कर ला। देखना गाय के गोबर की ही गोइठी हो।'

चिलम भर लाई थी मैं। दादी ने कहा—' मैं तो पढ़ी-लिखी नहीं हूं। पण्डित जी ने कथा सुनाई थी। तुम्हें सुनाती हूं। भीष्म पितामह ने गो का महत्त्व बताते हुए लक्ष्मी और गोओं से संबंधित एक कथा युधिष्ठिर को सुनाई। उन्होंने कहा—'एक बार अत्यंत मनोहारी रूप धारण कर लक्ष्मी ने गोओं के झूण्ड में प्रवेश किया। उनके अनुपम रूप से आश्चर्यचकित होकर गोओं ने उनसे उनका परिचय पुछा। लक्ष्मी जी ने कहा—'मैं लक्ष्मी हूं। सारा जगत् मेरी कामना करता है। सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण, विष्णु और अग्नि मेरे ही कारण तेजोमय हैं। मैं सर्वत्र हूं। मैं तुम लोगों के अन्दर निवास करना चाहती हूं।

गौओं ने कहा— 'तुम चंचला हो। और तुम्हारा बहुतों के साथ संबंध है। इसलिए हम तुम्हें अपने अन्दर स्थान नहीं दे सकतीं।' लक्ष्मी के बहुत अनुग्रह करने के उपरान्त गौओं ने कहा—'तुम हमारे गोबर और मूत्र में निवास कर सकती हो, क्योंकि हमारी ये दोनों वस्तुएं भी परम पवित्र हैं।' लक्ष्मी जी ने गौओं की कृपा सहर्ष स्वीकार कर ली। इन कथाओं के भावों को हम आज भी जीते हैं। हमारे किसी भी पर्व, त्योहार, उत्सव और मंगल कार्यों के पूर्व गाय के गोबर से घर आंगन लीपने का विधान बन गया है। यज्ञ में तो गाय के घी से हवन, गाय के दूध से स्नान का विधान है। अब सोचो। गाय का गोबर नहीं, उसमें तो लक्ष्मी का वास है।

मैं समझ गई थी। आस्था से भरे समाज में गाय भी माता है। दादी हमेशा कहती थीं-

माता बिना आदर कौन करे,
वर्षा बिना सागर कौन भरे?

गाय, मां से भी बढ़कर है। उस पर हमारा कृषि-जीवन निर्भर रहा है। हमारी खेती, हमारा स्वास्थ्य, हमारा अर्थतंत्र सब। मशीनीकरण के युग में बैल को पदस्थापित करने की कोशिश हुई। परंतु बैल का स्थान ट्रेक्टर नहीं ले सकता। ट्रेक्टर से हमारा आत्मीय संबंध

नहीं बन सकता। गाय से हमारी आत्मीयता बनती है। एक बार गाय को प्रसव पीड़ा हो रही थी। मैंने अपनी दादी को रोते देखा। पूछा – 'आप क्यों रो रही हैं?' वे बोली – 'तुम नहीं समझोगी। जाओ यहां से। खेलने जाओ।'

मेरे मन में प्रश्न पुष्ट होता रहा। स्वयं मां बनने पर गाय की प्रसव पीड़ा के समय दादी के रोने का कारण समझ में आ गया। ***'आत्मवत् सर्वभूतेषु, या पश्यति सा पण्डितः'*** का अर्थ भी समझ में आ गया। दादी को अक्षर और अंक का ज्ञान नहीं था तो क्या, वे पण्डिता ही थीं। वह पण्डिताई पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आई थी। परंतु अब हम सब भूलते जा रहे हैं। चाचा कहते थे– 'पढ़ेगा-लिखेगा होगा खराब, खेलेगा-कूदेगा बनेगा नवाब।'

मैकाले द्वारा स्थापित सोउद्देश्य हमारी शिक्षा पद्धति ने हमारी आस्थाओं पर ही कुठाराघात कर दिया। उनकी जड़ों में ही पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का खौलता पानी डाल दिया। तभी तो पृथ्वी, गंगा और गाय (माताएं) पूजनीय नहीं रहीं। पूजा का मतलब मंदिरों में धूप-दीप दिखाना नहीं होता। पृथ्वी, गाय और गंगा बचेगी ही नहीं तो संवर्द्धन किसका? सच तो यह है कि इनसे हम, हमसे ये हैं। परस्पर निर्भरता रही है। हाड़-मांस का पुतला बच जाए तो क्या, मानव कहलाने के लिए उसमें हृदय भी तो चाहिए। आस्थाएं ही तो हृदय के आभूषण है। इनके आधार पर ही हम मानव कहलाते हैं। तभी हम 'सर्वभूत हिते रता: रहने की उद्घोषण करते रहे हैं।

दादी के खूंटे पर भी अब उस गाय का वंशज नहीं है। दरवाजा ही नहीं, तो दरवाजे के श्रृंगार गाय और बैल को कौन पूछे? दादी के पोता-पोतियां पटना, दिल्ली, मुंबई अहमदाबाद ही नहीं शिकागो, आस्ट्रेलिया और लंदन भी चले गए। गाय लेकर नहीं। वहां भी उनसे लोग पूछते हैं –'आप भारतीय, तो गाय और गंगा को भी माता कहते हैं, क्यों?

इस क्यों का उत्तर दादी के वंशज, हमारे नाती–पोतियां नहीं दे पाते। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति में पढ़े हैं। काश! दादी ने हमें पढ़ने के लिए शहर नहीं भेजा होता। हमारे शहर में पढ़ने का खर्चा भी चार गायों के दूध से निकले घी, गोबर (गोबर) और बछड़ों को बेचकर ही निकालती थी दादी। शहर में उनके लिए भेजती थी, चालव-दाल, सब्जियां और घी। सब तो गाय की कृपा से ही उपजते थे खेत में। बच्चों को पढ़ाना-लिखाना, कहां बूरा है? हम क्या पढ़ा रहे हैं, महत्त्व इस बात का है। काश! हमने अपने बच्चों को गाय का सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और आर्थिक महत्त्व पढ़ाया होता। हमारे बच्चे देश-विदेश में जाकर अपनी संस्कृति में पृथ्वी, गंगा और गाय को माता मानने का कारण तो बता पाते। अपनी आस्था का रंग उन पर भी चढ़ा देते।

प्रसन्नता की बात है कि अब कुछ-कुछ ऐसा होने लगा है। बहुत होना बाकी है। दादी के जमाने में हम नहीं लौट सकते। अपने समय में ही अपनी तरह से गाय को रख सकते हैं।

जगत विभूति

महर्षि कणाद

• प्र. ग. सहस्रबुद्धे

वृद्ध ऋषिवर अपनी रुग्णशय्या पर लेटे हुए थे। उनके आस पास उनके शिष्य गण, पास पडोसी तथा परिवार जन जुटे हुए थे। मृत्यु की काली घटाएँ निकट आ रही थीं अत: सब चिंतामग्न थे।

सब लोग मौन थे कुछ समय ऐसा ही बीत गया! निकट बैठे हुए वैद्यराज ने कोई चूरण शहद में घोला और ऋषि श्रेष्ठ को चटाया। थोड़ी ही देर बाद रुग्ण ने आँखें खोली। तब सबके चेहरों पर आशाकिरण दमक उठी।

वैद्यराज ने पूछा, "कहिये, कैसा लग रहा है? कुछ कहना बताना चाहते हो? जल पीना चाहते हो?"

ऋषिवर ने थोड़ी सी गर्दन हिलाई और क्षीण स्वर में कहा, "नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिये।"

उनके बड़े भाई सिरहाने के पास खड़े थे। उन्होंने कहा, "हे प्रिय बंधो कांतिमान! हे कश्यप! हे कणाद! अब भगवान का नाम लो।"

ऋषिवर की देह अस्थिपंजर मात्र रह गई थी। वे बहुत दुर्बल हो गये थे। उन्होंने धीमी आवाज में कहा, "पीलु: पीलु: पीलु:"।

उनका एक प्रिय शिष्य सामने आ बैठा। उसने अपने मधुर स्वर में एक सुंदर भजन गाया। ऋषिवर उसे ध्यान से सुनते रहे। भजन पूर्ण हो जाने के बाद उन्होंने चारों ओर नजर दौड़ाई। अपने दोनों हाथ जोड़ने का प्रयास करते हुए उन्होंने कहा, "पीलु: पीलु: पीलु:"।

अब उन्होंने अंतिम सांस ली और वे इस दुनिया से चल बसे। उनके प्राण पखेरू अनन्त आकाश में उड़ गये।

सब लोग बहुत दुखी हुए। पारिवारिक जन फूट -फूट कर रोने लगे।

एक विद्वान ने कहा, "एक बुद्धिमान परिश्रमी लोक विलक्षण वैज्ञानिक आज इस दुनिया से चला गया। उसके विचार युगों तक मार्गदर्शन करते रहेंगे।"

दूसरे ने कहा, "वे वास्तव में विद्याप्रेमी थे। वे आजन्म विद्यार्थी बने रहे। खेती बाड़ी, घर बार, सोना चांदी पैसा आदि किसी बात का उन्हें मोह नहीं था। वे विद्याध्ययन में अखण्ड डूबे रहते थे।"

तीसरे ने कहा, "इसीलिये उन्होंने विवाह तक नहीं किया था। प्रयोगशाला ही उनकी सहधर्मचारिणी पत्नी थी।

एक विद्यार्थी ने कहा, "न उन्हें भोजन का ध्यान रहता था। न कपड़ों का। हम उन्हें दिन में चार बार आग्रह पूर्वक दूध पिलाते थे।

दूसरे विद्यार्थी ने कहा, "वे कभी किसी से कुछ मांगते नहीं थे। वे मितभाषी क्या मौनव्रती ही थे। स्वयं के बारे में तो वे कभी बोलते ही नहीं थे।''

किसी ने पूछा, "क्या वे नास्तिक या पाखंडी थे?"

एक प्रौढ़ विद्यार्थी ने उत्तर दिया, "नहीं, कदापि नहीं। वे सच्चे अर्थ में आस्तिक थे। स्वकर्तव्यपालन उनका धर्म था।"

किसी ने पूछा, "उन्होंने मरते समय भगवान का नाम क्यों नहीं लिया? शंकर, ब्रह्मदेव, विष्णु का स्तवन उन्होंने नहीं किया। सूर्य, वरुण, यम, या नारायण को भी उन्होंने वंदन नहीं किया। तब वे किसे मानते और पूजते थे?"

शिष्य ने कहा, "देखिये, आप सब लोगों ने उनके अन्तिम उद्‌गार सुने हैं तथा उन्हें हाथ जोड़ते देखा है। पीलु: का अर्थ है, कण, महाकण, परमाणु! वही हमारे गुरुदेव का आराध्य दैवत था। वही उनका परमेश्वर था।"

दूसरे शिष्य ने कहा, "परमेश्वर सर्वव्यापी है, सर्वात्मक है यह हम सब बोलते कहते सुनते हैं। वही बात हमारे गुरुदेव कुछ निराले ढंग से प्रस्तुत करते थे। वे कहते थे कि यह समूची सृष्टि कण कण से बनी है। हर परमाणु में अपार शक्ति संचित रहती है। परमाणु को ही ईश्वर मानो। यदि हम खोज करें तो हमें पता लगेगा कि हर परमाणु में अनगिनत सामर्थ्य समाया हुआ है।"

किसी ने कहा, "आप उनके बारे में कुछ अधिक बाते बताएँगे तो हम पर बड़ा उपकार होगा। वे मूलत: कहाँ के थे? उन्होंने बाल्यकाल कहाँ बिताया? उन्होंने कौन सा विशेष कार्य किया? ज्येष्ठ शिष्य ने कहा, "ऐसे ऋषिमुनि स्वयं के बारे में कभी कुछ नहीं कहा करते हैं। परंतु कभी-कभी उनके मुख से या उनके सगे संबंधियों से जो कुछ भी मुझे सुनने को मिला, उसके आधार पर मैं उनके जीवन विषयक कुछ मोटी बातें आप लोगों को बताने का प्रयास करता हूँ।"

बाल्यकाल

वह प्रौढ़ शिष्य अपने गुरुदेव की जीवनी इस प्रकार सुनाने लगा। गांधार देश में सुप्रसिद्ध तक्षशिला के पास एक यक्षशिला नाम की नगरी थी। वह क्रमू नदी के किनारे बसी थी। यक्षशिला में कश्यप नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह शांत तथा तृप्त था। वह वेदाध्ययन में मग्न रहता था। परिवार की उपजीविका के लिये वह पौरोहित्य करता था। उनकी पत्नी का नाम सुलक्षणा था। उसे औषधियों का अच्छा ज्ञान था। अपने घर के आस पास उसने बहुत सी औषधोपयोगी वनस्पतियाँ लगा रखी थीं। वह एक परोपकारी महिला थी।

उनके चार पुत्र थे जिनमें कांतिमान सबसे छोटा था। उसकी बुद्धि कुशाग्र थी। बचपन से ही उसे एक छंद था। हर बात के सम्बन्ध में वह अनेक प्रश्न पूछता था। हर चीज को वह तोड़ फोड़कर देखता था। इसमें क्या है? यह वस्तु किससे बनी है? इसका क्या उपयोग है? ऐसी उत्सुकता उसे सदैव लगी रहती थी। हर कार्य का कारण और परिणाम वह जानना चाहता था। क्यों और कैसे यह प्रश्न वाचक शब्द उसकी जिह्वा पर नित्य नाचते रहते थे।

एक दो बार उसने नीरांजन की जलती बत्ती उठाने का प्रयास किया था। उसी प्रकार चूल्हे से जलता अंगार निकालकर वह उसका निरीक्षण परीक्षण करना चाहता था। अग्नि उसके विशेष कौतुहल का विषय था। अग्नि निश्चित रूप में क्या है? वह कैसे बनता है? उसकी कितनी शक्ति है? उसका परिचय हमें कहां और कैसे मिल सकता है? अग्नि का उपयोग कितने ढंगों से किया जा सकता है? धुआं क्या है? उसके घटकद्रव्य कौन से हैं? वह क्यों निर्मित होता है? वह कहां चला जाता है? ऐसे प्रश्न वह सबसे पूछा करता था।

जहां भी धुआं होगा वहां अग्नि रहना ही चाहिए यह सिद्धान्त जब उसने सुना तब उसने कहा, "प्रकाश भी तो अग्नि का ही सहचर है। अत: यह कहा जा सकता है कि जहां प्रकाश होगा वहां अग्नि भी होगा। तो क्या सूर्य एक अग्नि गोला है? क्या चंद्र पर भी अग्नि होगा? जुगनू के पास प्रकाश है परंतु अग्नि क्यों नहीं? जुगनु के उपयोग से चूल्हा क्यों नहीं जलाया जा सकता ? प्रकाश तो है परंतु दाहकता नहीं, यह कैसे हो सकता है?

दस बीस जुगनू इकट्ठा बांधकर वह उनके प्रकाश में पढ़ने लिखने का प्रयास करता था। ऐसे उसके अनेक प्रयोग चलते रहते थे। उसकी प्रश्नमालिका तो कभी समाप्त ही नहीं होती थी।

"माँ, यह सूरज दिनभर तो सफेद या नीला दिखाई पड़ता है परंतु उदय और अस्त के समय वह लाल क्यों हो जाता है? सुबह पूर्व में सूर्य उदय और शाम को पश्चिम में उसका अस्त होता है तब दूसरे दिन सुबह वह पूर्व में कैसे आ जाता है? रात्रि में वह कहां रहता है? रातभर में चमकने वाले तारे दिन में कहां चले जाते हैं? नदी का पानी लगातार क्यों बहता रहता है? नदी में बाढ़ आती है वैसी समुद्र में क्यों नहीं आती? नदियों का मीठा जल समुद्र में खारा क्यों हो जाता है? वर्षा कैसे होती है? सर्दी में ठंडक क्यों बढ़ती है? ग्रीष्मकाल में ऊष्णता क्यों प्रतीत होती है? जाड़े के दिनों में अतिप्रभात में नदी और कुँओं के जल में गरमाहट कहां से आती है? बीज कैसे अंकुरित होता है? कैसे वह महान वृक्ष का रूप लेता है? सैकड़ों शाखाएँ तथा हजारों पत्ते उस छोटे से बीज में कहां छिपे रहते हैं?....."

माँ कहती थी बेटा, तुम्हारे इन प्रश्नों का उत्तर केवल ब्रह्मदेव ही दे सकते हैं।"

त्वरित कांतिमान पूछता था, "माँ वह ब्रह्मदेव कहां रहते हैं? वह बूढ़ा है या युवक है? मैं उसके पास जाऊँगा और अपनी सब शंकाएं उससे पूछूंगा। क्या वे मेरे प्रश्नों के उत्तर देंगे? या वह भी झल्लाकर कहेगा, "बस हो गये तुम्हारे प्रश्न। बोलना एकदम बंद करो।''

माँ ने कहा, "बेटा, वे ब्रह्मलोक में रहते हैं इतना तो मैं जानती हूँ। परंतु वह ब्रह्मलोक कहां है मुझे मालूम नहीं है। अनेकों को ब्रह्मदेव के प्रसन्न होकर वरदान देने की कथाएँ मैंने

पुराणों में सुनी हैं। परंतु उन सबको बड़ी उग्र तपश्चर्या करनी पड़ी थी।"

कांतिमान ने कहा, "मैं भी घोर अरण्य में चला जाऊँगा और कठोर तपश्चर्या करूँगा। फिर ब्रह्मदेव मुझपर कृपा करेंगे और मुझे सृष्टि में छिपे रहस्यों को समझावेंगे। अहहा! तब कितना आनंद आवेगा? माँ, मैं कल ही वन में चला जाता हूँ।"

माँ ने उसे पास खींच कर छाती से लगाया और कहा, "नहीं मेरे राजा बेटा, मुझे छोड़कर तुम कहीं नहीं जाओगे।"

अज्ञ या सूज्ञ

पाँच दिन पूर्व लाये गये गेंद के टुकड़े पास में बिखरे पड़े थे और अब वह बालक कल ही लाये सुंदर लट्टू के दिल्के उड़ा रहा था। उसका विचित्र उद्योग देखकर अचंभित हुई माँ निकट खड़ी होकर वह सब देख रही थी।

आखिर उससे रहा नहीं गया। उसने पूछा, "बेटा, तुम यह क्या कर रहे हो? यह कैसा तुम्हारा खेल हैं यह कैसी तुम्हारी रुचि है? सब कुछ तोड़ते फोड़ते रहते हो। इससे तुम्हें क्या आनंद मिलता है? कितना अच्छा गेंद था। अन्य बच्चे उससे चार छह वर्षों तक खेलते हैं। तुमने उसे चार दिनों में ही ठिकाने लगा दिया। इससे तुमने क्या पाया?"

बालक ने कहा, माँ चार दिनों तक मैंने उस गेंद से मन तृप्त होने तक खेल लिया। परंतु प्रथम दिन से ही मेरे मन में प्रश्न उठा कि क्यों यह गेंद उछलता है? पत्थर या लकड़ी जहां डालो वहीं पड़ी रहती हैं। गेंद क्यों उछलता है? उसके भीतर क्या है? इस सवाल ने मुझे बेचैन कर दिया। फिर मैंने उसे काटा। उसके भीतर कुछ भी नहीं था। मैंने सोचा, क्या यह खोखला होने से उछलता था या गोलाकार से या उसके आवरण के कारण? तब मैंने उसके आवरण को चीरा फाड़ा और देखा कि वह आवरण किसी चीकट पदार्थ का बना हैं वह खींचने पर तनता है और छोड़ने पर सिकुड़ जाता है। इसीसे गेंद उछलता है। खेलने की अपेक्षा यह ज्ञान मुझे अधिक आनंद दे रहा है।"

माँ ने पूछा, "अब यह नया भौंरा (लट्टू) तुम क्यों नष्ट कर रहे हो?"

बालक ने कहा, "माँ, मैं यह जानना चाहता हूँ कि वह जब घूमता है तब गिरता क्यों नहीं? और घूमना बंद होते ही वह क्यों गिर जाता है? क्या गति ही उसे स्थिरता देती है? क्या यही नियम पृथ्वी को भी लागू है? वह घूम रही है इसीलिये नष्ट नहीं हो रही है। गति ही जीवन है। मनुष्य का जीवन भी गति समाप्त होते ही नष्ट हो जाता हैं यहां तो उर्ध्वगति अर्थात् सद्गति या अधोगति अर्थात् विनाश ये दो ही पर्याय सृष्टि ने रखे हैं। माँ, इसके बारे में तुम क्या सोचती हो?"

माँ ने कहा, "बेटा, मैं यह सोचती हूँ कि तेरे सामने हाथ जोडू। तेरी बुद्धि की ऊँची उड़ाने देख मैं आश्चर्य चकित हो जाती हूँ। परन्तु हर वस्तु को छिन्न विच्छिन्न करने का तुम्हारा उद्योग मुझे बहुत पीड़ा देता है।"

बालक ने कहा, "वस्तुओं की अपेक्षा उनसे प्राप्त होने वाला ज्ञान अधिक महत्व रखता है। इस विश्व की हर वस्तु नश्वर हैं परन्तु उनमें जो ईश्वर है वह महत्व का हैं उस

ईश्वर की भेंट होते ही हमें असाधारण आनंद मिलता है। मैं उसी की खोज में लगा रहता हूँ।''

माँ ने कहा, "बेटा, सब लोगों का भोजन हो गया। मैं तुम्हारी राह देखती रही और खोजने निकली। तुम यहां इस कोने में बैठे होंगे ऐसी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। अब चलो शीघ्रता करो तुम्हें बड़ी भूख लगी होगी।"

बालक ने कहा, "माँ, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट–दिये इसका मुझे खेद है। तुमने मुझे याद दिलाई इसलिये मुझे स्मरण आया कि मैंने अभी तक भोजन नहीं किया है। जब किसी बात का तथ्य खोजने की धुन मुझ पर सवार होती है तब मेरी भूख प्यास गायब हो जाती है।

माँ ने कहा, "इसलिये तो मुझे तुम्हारी सतत् चिंता लगी रहती है। किसी समय लगता है कि तुम निरे अज्ञ हो, तुम्हारा मस्तिष्क असंतुलित हो गया है। परंतु जब मैं तुम्हारी मुखमुद्रा निहारती हूँ तुम्हारे मीठे-मीठे वचन सुनती हूँ तब मुझे लगता है कि तुम्हारे पास अलौकिक बुद्धिमत्ता है, तुम प्राज्ञ हो, सूज्ञ हो। तुम्हें पागल कहूँ या असाधारण सूझबूझ वाला कहूँ, मेरी समझ में नहीं आता है।"

यही बालक कांतिमान आगे चलकर काश्यप के नाम से जाना गया और कुछ काल के पश्चात वैशेषिक कणाद के रूप में प्रख्यात हुआ।

स्थानान्तर

एक दिन यक्षशिला और आसपास के प्रदेश में बहुत बड़ी उथल पुथल मच गई। धरती माता के उदर से कभी किसी ने सुनी न होंगी ऐसी आवाज आने लगी। भूचाल हुआ। धरती डोलने लगी, हिलने लगी, फटने लगी। कुछ नदियों ने अपने प्रवाह की दिशाएँ बदली। कुछ गायब हो गई। कहीं की जमीन ऊपर उठ गई तो कहीं की भीतर धंस गई। अनेक ग्राम ऐसे लुप्त हुए कि उनका न नाम बचा न चिन्ह। मकान ढह गये। हजारों लोग मर गये। जिसे जैसा सूझा, सब कुछ छोड़कर भागने लगा।

पुरोहित कश्यप भी अपने परिवार को साथ लिये सरस्वती नदी के किनारे किनारे दक्षिण की ओर चल निकले। वे प्रभासपट्टण पहुंचे। एक धनी श्रेष्ठी के यहां वे कुल पुरोहित के रूप में कार्य करने लगे।

कांतिमान आठ वर्ष का था। सरस्वती नदी के तटपर उसका व्रतबंध (यज्ञोपवीत संस्कार) किया गया। उसने त्रिसूत्र पहन लिया। ब्रह्मचर्याश्रम को स्वीकार कर पढ़ाई के लिये वह गुरुकुल पहुँचा।

प्रभासपट्टण से पाँच कोस दूरी पर, सरस्वती नदी के तटपर आचार्य सोमव्रत शर्मा का गुरुकुल था। उसमें विविध शास्त्र तथा कलाएँ पढ़ाई जाती थीं। वहां पाँच हजार विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। कांतिमान की बुद्धि तथा ऋतंभरा प्रज्ञा को देखकर सोम शर्मा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने देखा कि कांतिमान की ग्रहणशक्ति अलौकिक हैं। एक बार सुनकर ही उसे सम्पूर्ण पाठ कण्ठस्थ हो जाता है। वह हर पाठ का तथा पद का अर्थ समझना चाहता है और सदैव अपनी स्वतंत्र प्रतिभा की चमक दिखाता है। केवल चार वर्षों में उसने चारों वेदों का

सार्थ अध्ययन पूर्ण कर लिया।

वह बारह वर्ष का था। इसी समय उसकी माँ की मृत्यु हुई। वह घर आया। माँ की देह से वह लिपट गया। उसके चरण पकड़कर उसने बहुत अधिक शोक किया। ".....माँ तुमने कहा था, मुझे छोड़ कहीं न जाना और अब तुम ही मुझे छोड़ दूर दूर चली गई। जाने के पूर्व तुमने यदि मुझे बुलाया होता तो मैं यम देव से प्रार्थना कर तुम्हें वापस लाया होता। सावित्री या नचिकेता के समान मैंने वरदान प्राप्त किये होते,.....तुम्हारी प्रेरणा से ही मैं गुरुकुल में गया। तुम्हारा स्मरण मुझे सदैव सुख देता रहा। तुम्हारी सूचनाओं के फलस्वरूप ही मैं गुरु देव को प्रसन्न रख सका। ....माँ अब तो मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं भी मृत्युमार्ग से तुम्हारे पास पहुँचू और यमदेव से दो दो बातें करूँ.... माँ मुझे भी अपने साथ ले चलो...." कांतिमान बहुत दिनों तक शोकमग्न रहा। पिता, भाई, भाभियाँ आदि सबने उसे बहुतेरे समझाया। जैसे तैसे वह शांत हुआ।

एक दिन आचार्य सोम शर्मा स्वयं उसके घर पहुँचे और उसे समझा बुझाकर तथा सांत्वना देकर गुरुकुल में ले आये। कांतिमान अब विविध दर्शन, शास्त्र तथा कलाओं का अध्ययन करने लगा। तर्कशास्त्र उसका विशेष प्रिय विषय था। उसका हर विधान तर्क शुद्ध रहा करता था। किसी भी वाद-विवाद या शास्त्रार्थ में कांतिमान की अवश्य ही विजय हुआ करती थी।

कांतिमान अपने साथ अध्यापन कार्य करें और अपने पश्चात् गुरुकुल संभालें ऐसी आचार्य सोम शर्मा की इच्छा थी। परंतु कांतिमान उन सब बातों को बंधन रूप मानता था।

एक दिन आश्रम का परित्याग कर वह अपने घर आ पहुँचा।

स्वच्छन्दता

घर पर सबने उसका स्वागत किया। पिताजी ने उसका विवाह करना चाहा। परंतु कांतिमान ने स्पष्ट शब्दों में अपना विरोध दर्शाया। पिताजी के विवाह विषयक सब प्रयास असफल रहे।

पिता की मृत्यु के बाद कांतिमान की स्वैर वृत्ति कुछ बढ़ गई। कभी वह वन में चला जाता था और कई दिनों बाद लौटता था। कभी वह स्वयं को अपने कमरे में बंद कर लेता था और अपने प्रयोगों में मग्न रहता था। तब उसे खाने पीने का थोड़ा भी ध्यान नहीं रहता था। घर के किसी भी काम में वह हाथ नहीं बटाता था। अपने प्रयोगों में यश न मिलने पर वह चिढ़ता झुंझलाता था और किसी पर भी गुस्सा निकालता था।

वह कभी भी सबके साथ भोजन पर नहीं आता था। तब घर के लोग उसकी थाली लगाकर उसके कमरे में रख देते थे। वह थाली तीन चार घंटों तक पड़ी रहती थी। अनेक बार सुबह का परोसा भोजन वह शाम को उपयोग में लाता था।

एक बार भाभी ने उसे पूछा, "आज की रसोई कैसी लगी?"

कांतिमान ने कहा, "बढ़िया, उत्तम"

उसने पूछा, "भोजन गरम था या ठंडा?"

कांतिमान ने कहा, "वह तो मेरे ध्यान में नहीं है परन्तु बहुत ही अच्छा था।"

भाभी ने पूछा, "साग भाजी कौन सी थी?, आचार किस चीज का था? मिष्ठान्न क्या था?"

कांतिमान ने कहा, "वह तो मेरे ध्यान में नहीं है परन्तु हर पदार्थ उत्कृष्ट था। खीर बढ़िया बनी थी।"

भाभी ने जोर से हँसते हुए कहा, "अब तो तुम्हारी कमाल हो गई। तुमने जो भोजन किया वह सुबह का परोसा हुआ था। तुम्हारी साग भाजी में मैंने जानबूझकर अधिक नमक मिला दिया था। भोजन में कोई भी मीठा पदार्थ नहीं था। कटोरी में कढ़ी थी और वह बहुत खट्टी थी।"

वह सब सुनकर कांतिमान भी जोर जोर से हँस दिया। उसने कहा, "मेरी मजाक उड़ाने के लिये कुछ भी मनगढंत बातें बता रही हो।"

एक बार उसकी थाली में अनेक रोचक पदार्थ थे। बच्चों ने आते जाते उन्हें खा लिया और थाली ज्यों की त्यों ढककर रख दी। अपने कार्य से मुक्त होकर कांतिमान भोजन करने आया। जब उसने ढक्कन हटाया तब उसने पाया कि थाली एकदम खाली हैं तब वह जोर से हँसा।

उसे सुनकर दोनों भाभियाँ वहां आ पहुँची। उन्होंने पूछा "क्या बात है? बहुत जोर से हँस रहे हो।"

कांतिमान ने कहा, "मैं कैसा भूलक्कड़ हूँ देखिये। पता नहीं कब आकर मैंने भोजन कर लिया और अब फिर से भोजन करने आया तब देखा कि थाली एकदम खाली है।"

भाभी ने कहा, "देवर जी, तुम धन्य हैं।" तुम्हारी थाली में परोसी चीजें, बच्चे लोग खा गये और तुम्हें पता ही नहीं चला। अब मैं फिर से थाली परोसकर लाती हूँ। मेरे सामने तुम्हें भोजन करना होगा।"

हर बात में कांतिमान इसी प्रकार नि:संग, निरपेक्ष था। उसका बर्ताव दिनोंदिन अधिक विचित्र होने लगा। वह किसी से कुछ बोलता नहीं था और न कभी किसी की शिकायत करता था। परंतु उसकी प्रयोगशाला के उपकरणों को यदि किसी ने हाथ लगाया तो वह आपे से बाहर हो जाता था और बच्चों पर हाथ भी उठाता था। एक बार इसी पर से बात बढ़ गई और कांतिमान घर छोड़कर वन में चला गया। एक कुटी बनाकर वहां वह रहने लगा। भाइयों ने तथा भाभियों ने उसे मनाने का बहुत प्रयास किया परंतु वह नहीं माना। वह घर नहीं लौटा।

चिंतनमग्न जीवन

कांतिमान दिनभर अपनी कुटी में वाचन लेखन तथा मनन चिंतन में लगे रहते थे। रात्रि में जब चाँदनी छिटकती थी तब वे खेतों पर पहुँते थे।

किसान सब धान्य अपने घर ले गये हैं। दिनभर में चिड़ियों को जितना चुगना था चुग लिया है। सब के पेट भर गये हैं। यह देखकर कांतिमान खेतों पर जाते थे। और धान्यकण बीनते थे। इस प्रकार के मिला धान्य ही वे पकाकर खाते थे। कंदमूल फल ही उनका मुख्य

आहार रहता था।

रात्रि के समय जब वे धान्यकण बीनते थे तब अनेक लोग उनकी हँसी मजाक उड़ाते थे। लोगों ने उन्हें अनेक निंदा व्यंजक नाम दिये थे। कोई उन्हें कणभुज कहता था। कोई उन्हें कणभक्षी, कणशोधक कहते थे तो कुछ लोगों ने उन्हें कणयोगी बना दिया था।

लोग कुछ भी कहें, कांतिमान अविचलित ढंग से अपना काम करते रहते थे। ***हाथी चलत है अपनी चाल से कुतर भुँकत वा को भुँववा दो*** वाली कहावत वे चरितार्थ करते थे। किसी की टीका टिप्पणी की ओर वे तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। वे मानों सदा सर्वदा उन्मनी अवस्था में विचरते थे। जैसे उनके मन पर निंदा का कोई परिणाम नहीं होता था। वैसे ही वे स्तुति को भी अनसुनी कर देते थे। ऐहिक लाभ अलाभ की उन्हें कभी कोई चिंता नहीं रहती थी। दुनिया में उनका कोई भी शत्रु नहीं था। सब उनके मित्र थे। पशु पक्षी कीड़े मकोड़े उनके मित्र थे। पेड़ पौधे उनके सखा थे। कई बार वे पृथ्वी को शय्या बनाते थे और आकाश को ओढ़कर सोते थे।

प्रत्येक वस्तु, वाक्य तथा विचारों का वे खण्डश: परीक्षण करते थे। इसलिये उन्हें कुछ लोग विच्छेदक कहते थे। एक ही समय वे अनेक बातों का ध्यान रखते थे।। इसलिये उन्हें शतावधानी कहते थे।

रात्रि के उनके स्वैर संचार के कारण लोग उन्हें उलूक कहने लगे। परंतु इस विषय में कुछ लोगों का कहना है कि कंधार प्रांत में एक उलूक संप्रदाय था। कांन्तिमान के पूर्वज उस संप्रदाय के अनुयायी थे इस लिये उन्हें उलूक कहा जाता था। वह लक्ष्मी माता का वाहन है। अत: उसे गरुड़ के समान ही पूजनीय माना जाता है।

विश्व का कणात्मक स्वरूप विशद करने के कारण विद्वानों ने उन्हें कणाद की उपाधि प्रदान की।

उनके विचारों से प्रभावित होकर दूर-दूर के नवयुवक उनके पास पढ़ने के लिये आने लगे। सब लोग उन्हें महर्षि कणाद कहने लगे। उनके वैशेषिक दर्शन की कीर्ति पताका विश्व भर में फहरने लगी।

इस प्रकार उस ज्येष्ठ शिष्यवर ने अपने गुरुदेव की संक्षिप्त जीवनी सबको सुनायी।

वैशेषिक दर्शन

महर्षि कणाद की विविध विषयों पर बहुत बड़ी ग्रंथ रचना करने की बात कही जाती है। उन्होंने कणमय जगत का और सर्वव्यापी कणों का सिद्धान्त दुनिया को दिया ऐसा माना जाता है। परन्तु इन विषयों की कोई भी कणादकृत ग्रंथ रचना आजतक उपलब्ध नहीं हुई है। उनका वैशेषिक दर्शन नाम का एक ही ग्रंथ आज हम सब को देखने को मिलता हैं उसमें दस अध्याय हैं और तीन सौ सत्तर सूत्र हैं। एक एक सूत्र में महान अर्थ भरा हैं उसे हम गागर में सागर कह सकते हैं।

प्रथम अध्याय का पहला ही सूत्र है–

"***अथातो धर्म व्याख्यास्याम:***" अर्थात् अब हम धर्म का विवेचन विश्लेषण करेंगे।

इस प्रथम सूत्र से ही हमें इस ग्रंथ के हेतु की तथा उसके विस्तार की और महत्व की कल्पना प्राप्त होती है। इस प्रकार से यह ग्रंथ सम्पूर्ण मानवजाति के लिए उपकारक है। मानवता रूप प्रासाद की वह दृढ़ नींव है।

दूसरा सूत्र विशेष मननीय तथा अध्ययनीय है। वर्तमान में प्रचलित धर्म विषयक अनेक भ्रमों का यह निराकरण करता है। आज धर्म के विरोध में विद्वान कहे जानेवाले लोग भी न मालूम कैसे कैसे आरोप आक्षेप उठाते हैं। महर्षि कणाद ने एक ही प्रहार में उन सबको चकनाचूर कर दिया है। वे कहते हैं—

यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म:

अर्थात् जो ऐहिक एवं पारलौकिक प्रगति कराता है उसे धर्म कहते हैं। व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक उन्नति साधना हो, उसे ही धर्म कहते हैं। धर्म की इतनी सादी, सरल संक्षिप्त तथा सुस्पष्ट व्याख्या अन्यत्र नहीं पायी जाती।

दूसरे अध्याय में विश्व के मूलभूत पदार्थों का विवरण है। प्रत्येक पदार्थ अनेक पदार्थों के संयोग से बनता है। मिश्रण प्रतिमिश्रण से नये नये पदार्थ बनते हैं। एक रूप में अनेक रूप समाविष्ट होते हैं। विभिन्न रूप फिर से एकरूप हो जाते हैं।

कारणाभावात् कार्याभाव: अर्थात् हर कार्य के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य रहता है। बिना कारण के कार्य नहीं बनता है।

तीसरे अध्याय में आत्मा तथा मन का विचार किया गया है। इंद्रियों द्वारा मिलने वाले सुख दुख भी उसमें वर्णित हैं। उसी में यह भी आया है कि वेद वाक्यों का अर्थ हमें ठीक से समझ लेना चाहिए। हमारा अनुमान तर्कशुद्ध होना चाहिए। हमें निरंतर ध्यान करना चाहिए। आत्मसाक्षात्कार के लिए यह आवश्यक है। आत्मा एक है।

चौथे अध्याय में नित्य अनित्य चर्चा है। जो नित्य पदार्थ हैं उनके कारण नहीं रहते हैं। अनित्य पदार्थों के पीछे कारण रहते हैं। हर इन्द्रिय की अपनी अलग शक्ति है और वह अपने विषय का ही बोध कराती है। जैसे कानों का सुनना आंखों का देखना, जीभ का रसज्ञान आदि।

इस विश्व में असंख्य परमाणु तैरते रहते हैं। उनके संयोग से विविध पदार्थ बनते बिगड़ते हैं।

ईश्वर अजन्मा है।

पाँचवें अध्याय में कर्मकारण चर्चा है।

आत्मा हर कर्म का प्रेरणा स्थान है।

छठे अध्याय में ज्ञान, त्याग, अहिंसा आदि सद्गुणों का विवेचन है। मानवीय जीवन से संबंधित अनेक विषयों पर उसमें मार्गदर्शन किया गया है। इसमें एक सूत्र है – "नित्यं परिमण्डलम्" परमाणु नित्य है ऐसा ही उसका भावार्थ है।

सातवें अध्याय में मुख्यत: ये विषय आये हैं :– कार्यगुण और कारणगुणों में समानता रहती है।

महत् परिमाण दृष्टिगोचर है परंतु अणुपरिमाण अगोचर हैं।

इस दुनिया की छोटा या बड़ा की कल्पना सापेक्ष है। खसखस के दाने से राई का दाना, राई से सरसों, सरसों से बेर, बेर से कैथा, कैथे से नारियल, नारियल से तरबूज बड़े रहते हैं। अत: इस दुनिया की हर वस्तु एक साथ छोटी भी रहती है। बड़ी भी रहती है।

आठवें अध्याय में प्रमुख विषय इस प्रकार है :— विशेषणों के फलस्वरूप ही हमें किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता है। कर्म तथा गुण असंख्यात हैं। विशेष ज्ञान से विशिष्ट बुद्धि उत्पन्न होती है। रंग रूप आकार आदि से ज्ञान प्राप्ति होती है। भाषा और जिह्वा, तेज और आँखें, वायु और त्वचा, इनके संबंधों को समानाधिकरण कहते हैं। अन्य द्रव्य निमित्त कारण कहलाते हैं।

नवम् अध्याय में इन विषयों की चर्चा है :— कार्य की निर्मिति पूर्व अभाव का प्राग्भाव कहते हैं। उसके नाश के बाद होने वाले अभाव को ध्वंसाभाव कहते हैं। आत्मा और मन इन दोनों के संयोग को ही आत्मसाक्षात्कार कहते हैं। आत्मा को विशाल रूप देने से ईश्वरीय साक्षात्कार होता है। अनुमान एक ज्ञान साधन है। जहाँ भी धुआं होगा वहाँ अग्नि का होना आवश्यक है यह अनुमिति है। प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही वास्तविक प्रमाण हैं। अनुमान प्रमाण का ही एक भाग शब्द प्रमाण है। प्रत्यक्ष तथा अनुमान से संस्कार होते हैं। संस्कारों से ही स्मृति बनती है। इंद्रिय दोष तथा संस्कार दोषों से अविद्या उत्पन्न होती है। जो वस्तु है नहीं, उसे मानना ही भ्रम है। ज्ञान से भ्रमों का नाश होता है। इस प्रकार से नवम् अध्याय में, आत्मा कार्य, कारण संयोग, विरोध समवाय, मन, संस्कार, स्वप्न, धर्म आदि विषयों के संबंध में बताया गया है।

दसवें अध्याय में, इष्ट, अनिष्ट, कारण भेद, सुख, दु:ख इत्यादि विषयों का विवेचन है। उसमें बताया है कि वेदों को प्रमाण मानना चाहिए। वेदोक्त कर्मों को कर्त्तव्य के रूप में मानना चाहिए। उन कर्मों से धर्म का पालन होता है। धर्म स्वर्ग तथा मोक्ष दिलाता है। ज्ञान से मिथ्या बातों की निवृत्ति होती है। मुक्तिदायक ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। ***सब शास्त्र धर्म प्रधान हैं। वेद धर्म का मूल है।***

इस प्रकार महर्षि कणाद ने मनुष्य की ऐहिक तथा पारलौकिक उन्नति का मार्ग बताया है। वे कहते हैं कि मनुष्य को द्रव्यों का विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। उससे परम पुरुषार्थ अर्थात् कैवल्य सुलभ हो जाता है।

अन्य दर्शनकार चौबीस तत्त्वों को मानते हैं। कणाद ने पचीसवें विशेष तत्व को मान्यता दी है। इसी लिए उनके विचारों को वैशेषिक दर्शन कहते हैं। कणाद का जीवन, उनका त्याग, उनकी अखण्ड ज्ञान साधना आदि सभी बातों में विशेषता थी। इसलिए भी उनके बताये हुए तत्त्वों को वैशषिक कहा जाता है। महर्षि कणाद का सब कुछ विशेष ही था।

विविधा

हिन्दू पौराणिक उपाख्यानों में विज्ञान

• विश्व मोहन तिवारी

यह शीर्षक विरोधात्मक लग सकता है – विज्ञान की बातें और वे भी पौराणिक उपाख्यानों से! इस संदर्भ में हमें सत्रहवीं शती के प्रसद्धि वैज्ञानिक गालिलेओ की घटना याद आती है। टॉलैमी ने सौरमंडल की संरचना की एक अवधारणा प्रस्तुत की थी कि इस सौरमंडल का केन्द्र पृथ्वी है तथा सूर्य सहित अन्य ग्रह, वास्तव में समस्त ब्रह्माण्ड पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। यह अवधारणा बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई क्योंकि यह बाइबिल की इस संबंध की अवधारणाओं से मेल खाती थी। कोपरनिकस ने टॉलैमी के सौर मंडल की अवधारणा को गलत सिद्ध किया था जिसमें कहा गया था कि पृथ्वी सौरमंडल का केन्द्र है। कोपरनिकस ने गणितीय सिद्धान्तों तथा आंकड़ों से सिद्ध किया कि सूर्य सौरमंडल का केन्द्र है। गालिलेओ ने इस सिद्धान्त का जब तेजी से प्रचार किया तब मार्च १६१६ में कार्डिनल बैल्लार मीने ने एक आज्ञप्ति जारी की जिसके अनुसार गालीलेओ कोपरनिकस की अवधारणा को न तो स्वीकार कर सकता था और न उसका बचाव कर सकता था। १६२४ में गालिलेओ १६१६ की आज्ञप्ति को रद्द करवाने रोम गए। वह आज्ञप्ति रद्द तो नहीं हुई किन्तु पोप ने उन्हें दो शर्तों पर सौरमंडल की दोनों – टॉलैमी की तथा कोपरनिकस की – अवधारणाओं पर लिखने की अनुमति दे दी। एक तो गालिलेओ इन दोनों अवधाराणाओं पर निरपेक्ष रहेंगे। दूसरे वे निष्कर्ष लिखेंगे कि, 'मनुष्य सर्वशक्तिमान ईश्वर द्वारा विश्व निर्माण की प्रक्रिया को जानने के लिए अतिक्षुद्र प्राणी है।' सन् १६३२ में गालिलेओ ने एक पुस्तक लिखी, "टॉलैमी तथा कोपरनिकस के सौरमंडल की रचना पर संवाद।" बस, पोप को कट्टरपंथियों द्वारा समझाया गया कि चर्च की पारम्परिक शिक्षा पर यह पुस्तक लूथर तथा काल्विन दोनों के संयुक्त प्रहार से भी अधिक चोट कर सकती है। ६२ वर्ष की आयु में बीमार गालिलेओ को अपना घर (फ्लौरैन्स के निकट) छोड़कर रोम आना पड़ा। एक समिति ने उन्हें दोषी घोषित किया और जेल में कैद की सजा दी, क्योंकि उन्होंनें कोपरनिकस की अवधारणा को मान्यता दी थी और उस पर शिक्षा भी दी थी। उनसे कहा गया कि वे अपनी उस मान्यता को नकारें। गालिलेओं ने अपनी पुरानी गलतियों के लिए पश्चाताप किया और उनकी मान्यता को त्यागा। तब कहीं पोप ने उनके जेल दण्ड को 'गृह कैद' में बदला। गालिलेओ ने तो यह अपमानदायक दण्ड भुगता, स्वयं कोपरनिकस ने अपनी खोजपरक अवधारणा को अनेक वर्ष गुप्त रखा था। उन्होंने उसे मृत्यु के दो वर्ष पूर्व ही प्रकाशित किया

था। गालिलेओ, कहना चाहिए, भाग्यवान थे, पश्चाताप करने के बाद मात्र 'गृह कैद' में रहे। टाइको ब्राहे (१५४६-१६०१) को अरस्तु टॉलैमी की खगोल अवधारणाओं को वैज्ञानिक आधार पर गलत सिद्ध करने के अपराध में अपनी जागीर से बहिष्कृत किया गया था। ज़र्दानो ब्रूनो (१५४८-१६०३) ने कोपरनिकस की अवधारणा को सत्य मानते हुए, उसका प्रचार किया, तथा 'रिवैलेशन' या इहलाम को अंधविश्वास कहा। इसके कारण उन पर चर्च ने मुकद्दमा चलाया तथा दण्ड स्वरूप उनका जीवित दाह-संस्कार किया गया।

डार्विन के साथ इतना कटु तथा वैमनस्य व्यवहार नहीं हुआ क्योंकि वे स्वयं ही चर्च के भय के मारे अपने क्रांतिकारी 'विकासवाद के सिद्धान्त' को प्रकाशित ही नहीं कर रहे थे। टी.एच. हक्सले सरीखे साहसी मित्रों के दबाव में उन्होंने जैसे ही प्रकाशित किया, उन पर चर्च के पादरियों ने हमले शुरू कर दिए। सं.रा. अमेरिका जैसे देश में आज भी विद्यालयों को डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त के समानान्तर बाइबिलपरक विश्वसृजन सिद्धान्त की शिक्षा देनी पड़ती है।

इस तरह विज्ञान की प्रगति में ईसाई धर्म ने अनेकों बार अवरोध उत्पन्न किए, चाहे वे अन्ततः असफल ही क्यों न रहे हों। अतएव पाश्चात्य विचारकों की सोच में यह धारणा दृढ़ हो गई है कि धर्म विज्ञान का विरोधी है।

भारत में कोपरनिकस के एक हजार वर्ष पूर्व ही आर्यभट्ट ने सौरमंडल के केन्द्र में सूर्य के होने के सिद्धान्त को सिद्ध कर दिया था। आर्यभट्ट का विरोध कुछ पंडितों ने अवश्य किया होगा, और कुछ ने अंधविरोध भी किया होगा, किन्तु उनके विरोध में कोई भी राज-आज्ञप्ति अथवा धार्मिक-आज्ञप्ति की घोषणा नहीं हुई थी। भारत तो धर्म प्राण देश रहा है। यदि हिन्दू-धर्म विज्ञान का विरोध कर रहा होता तो भारत बारहवीं शती तक विज्ञान में विश्व में अग्रणी न रहा होता।

हमें यह समझने का प्रयत्न करना चाहिये कि भारतीय धर्म विज्ञान विरोधी नहीं है, वरन विज्ञान सम्मत हैं। धर्म, विशेषकर भारतीय धर्म मनुष्य का प्रकृति से संबन्ध, मनुष्य से संबन्ध, समाज से सम्बन्ध और परम सत्ता अथवा ब्रह्माण्डीय चेतना से सम्बन्धों की खोज करता है और इन संबन्धों के औचित्य तथा आदर्शों पर विचार करता है। जब कि विज्ञान शुद्ध पदार्थवादी है, वह पादार्थिक सत्ता के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता यथा ईश्वर या चेतन तत्व में विश्वास नहीं करता; चेतन तत्व, उसके अनुसार पदार्थ से ही उद्भूत है। विज्ञान भी मनुष्य का मनुष्य से, समाज से तथा प्रकृति से जो सम्बन्ध है उन का विचार करता है, और प्रकृति के रहस्यों की खोज करता है। विज्ञान और धर्म के क्षेत्र इस तरह अलग हो जाते हैं, किन्तु नैतिकता का क्षेत्र उभयनिष्ठ है; नैतिकता का मूलआधार जो भारतीय धर्मों के पास है, वह– प्राकृतिक विज्ञान तथा समाजिक विज्ञान के आधार से अधिक सशक्त एवं विश्वसनीय है। कोई भी विचार तंत्र, चाहे वह धर्म का हो, विज्ञान का हो, द्वन्द्वात्मक पदार्थवाद का हो, एक मूलभूत विश्वास के आधार पर ही खड़ा होता हैं। यदि कोई धर्म एक मूल विश्वास को छोड़कर शेष शास्त्र में अपनी पद्धति में वैज्ञानिक सिद्धान्तों को आधार

मानता है तब विज्ञान को उसका विरोध नहीं करना चाहिए। वैसे भी विज्ञान को धर्म का विरोध नहीं करना चाहिये, वरन अंधविश्वास का विरोध होना चाहिये।

पुराण अर्थात अत्यन्त पुराने धर्मशास्त्रों के अंग से हम आज के प्रौवैज्ञानिक (प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान) जीवन को समझने समझाने के लिये क्या ले सकते हैं? हमें यह मालूम होना चाहिये कि यद्यपि हमारे पुराण विश्व में प्राचीनतम हैं, तथापि वे आज भी हमारे जीवन में जीवित हैं। हमारे पौराणिक आख्यान कथानकों से भरे पड़े हैं। ये कथानक हमारे जीवन में पुराणों तथा तंत्रशास्त्रों से तो आते ही हैं, ये महाकाव्यों– रामायण तथा महाभारत– से भी आते हैं। प्रश्न फिर भी उठता है कि तर्कों से परे कथानकों का उपयोग तर्कों के आधार पर निर्मित प्रौविज्ञान समझने के लिये कैसे ले सकते हैं? यहीं पर विज्ञान-संचार के लेखक की रचनाशीलता की शक्ति आती है। कथानक पाश्चात्य अर्थों में निश्चित रूप से '*इतिहास*' नहीं है। इतिहास से सीख लेना कभी कभी कठिन हो सकता है, किन्तु भारतीय कथानक से सीख लेना अपेक्षाकृत सरल होता है, क्योंकि घटनाओं का चयन तथा रचनात्मक प्रस्तुति ऐसी होती है कि समाज को भविष्य में दिशा मिल सके। कथानक चाहे तर्कों से परे हों, किन्तु वे मिथ्या नहीं, वे अत्यन्त गहरे सत्य– जिसे शायद हम मानव जीवन संबन्धी 'आद्य सत्य' कह सकते हैं– लिये होते हैं।। जब वे हमारे प्रत्यक्ष जीवन को प्रभावित करते हैं, तभी हम उन प्राचीन 'पुराणों' को, जो हमें जीवन के सत्य से परिचित कराते हैं, जीवित कह सकते हैं। कथा अपनी स्पष्ट सतह पर 'प्रतीक', रूपक या 'बिम्ब' होते हैं। वास्तव में जीवित कथानक हमारी केवल सोच नहीं वरन 'सोच' की निर्मिति को भी निर्धारित करते हैं। एक इस कारण से भी भारतीय सोच की निर्मिति पाश्चात्य सोच की निर्मिति से भिन्न होती है। यहां यह भी कहना उपयुक्त होगा कि कथानक ऐतिहासिकता अर्थात् समय के भी परे हो सकते हैं। और तभी वे अनन्त काल के लिये 'वर्तमान' में प्रासंगिक बने रह सकते हैं। अस्तु, इस लेख का ध्येय पौराणिक उपाख्यानों के उपयोग द्वारा विज्ञान संचार की संभावनाएं प्रदर्शित करना है, अवश्य ही विज्ञान की शर्तों पर।

हमें यह स्वीकार करना चाहिए, विशेष कर भारत में, कि विज्ञान संचार एक समस्या है, इसके हल कठिन हैं। ये हल संप्रेषण योग्यता के साथ ज्ञान, श्रम तथा धीरज की अपेक्षा करते हैं। पाश्चात्य संसार में विज्ञान-शिक्षा कोई ३०० वर्षों से दी जा रही है, वे लोग भी प्रौद्योगिकी संसार में अत्याधुनिक जीवन जी रहे हैं। किन्तु जब मैंने 'गैलप संगठन' की अपसामान्य घटनाओं पर विश्वास करने वाले अमरीकियों की मतगणना के आंकड़े देखें, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, (डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू, एनएसएफ जीओबी/एसबीइ....)। अतीन्द्रिय ज्ञान में लगभग ५५ प्रतिशत अमरीकन विश्वास करते हैं। भूत, भूत जीवन में आ सकते हैं, घर भुतहे हो सकते हैं– आदि में लगभग ४० प्रतिशत अमरीकन विश्वास करते हैं। 'लोग मृत व्यक्तियों से सम्पर्क कर सकते हैं'– इस बात में लगभग ३० प्रतिशत अमरीकन विश्वास करते हैं। यह आंकड़े यही सिद्ध करते हैं कि मानव समझ में वैज्ञानिक सोच का होना आसान नहीं है। अतएव यदि भारत में अधिकांश लोगों ने गणेश जी के दूध

पीने में विश्वास किया था तो इससे निराश होने की बात नहीं। वरन ऐसे अवसरों का विज्ञान-संचार में लगे लोगों को वैज्ञानिक-सोच का प्रसार करने के लिये पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिये। साथ में ऐसा करते समय हमें यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि हम ऐसे लोगों की धार्मिक भावनाओं को अनावश्यक ठेस न पहुंचाएं। विज्ञान का कार्य धर्म का विरोध नहीं, अंधविश्वासों का विरोध होना चाहिये। किन्तु अंधविश्वासों का विरोध करते समय उन विश्वासों के प्रतीकात्मक अर्थों, रूपकात्मक अर्थों पर भी विचार करना आवश्यक होता है, साथ-साथ विश्वास करने वाले के मानसिक एवं बौद्धिक स्तर का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है।

विज्ञान संचार के माध्यम वही हो सकते हैं जो ज्ञान संचार के हैं। ज्ञान संचार में भी हमारे यहां शिक्षण तंत्र में स्वतंत्र सोचने की शक्ति के विकास पर ध्यान न देकर विद्यार्थियों पर ज्ञान के नाम पर जानकारी लादी जाती है और ऐसा व्यक्ति अपने को ज्ञानवान समझ बैठता है। ऐसी ही गलती विज्ञान के विद्यार्थी भी कर बैठते हैं क्योंकि विज्ञान की शिक्षा में भी वैज्ञानिक सोच या समझ के स्थान पर जानकारी ही दी जाती है। यदि कोई व्यक्ति विज्ञान में स्नातक है तब भी इसकी बहुत संभावना है कि ऐसे व्यक्ति की सोच वैज्ञानिक न हो। अतएव विज्ञान शिक्षा पद्धति में सुधार की आवश्यकता है। विज्ञान शिक्षा में विज्ञान की जानकारी से अधिक उपयोगी होता है 'वैज्ञानिक-सोच' का विकास। वैज्ञानिक सोच क्या है? किसी भी 'सोच' में बुद्धि का स्थान मन से ऊपर होता है। मन इच्छाओं, आकांक्षाओं, आग्रहों का स्रोत तथा घर होता है। वैज्ञानिक सोच जब यह मांगती है कि निर्णय विषयनिष्ठ जानकारी तथा तर्क के आधार पर लेना चाहिये, तब उसका अर्थ यही होता है। निर्णय बुद्धि द्वारा मन पर पूरे नियंत्रण के साथ लेना चाहिये। स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया में बुद्धि के नियंत्रण को आत्मिक विकास के लिये आवश्यक माना हैं इस तरह हम बार-बार देखते हैं कि हिन्दू धर्म विज्ञान सम्मत है।

यदि हम विज्ञान संचार की समस्याओं को समझ लें तब विज्ञान-संचार में हमें सफलता मिलने की सम्भावना बढ़ जाती है। आज इलैक्ट्रॉनिकी माध्यमों की तुलना में ज्ञान संचार के अन्य माध्यमों का महत्त्व कम होता जा रहा है। इलैक्ट्रॉनिकी माध्यमों में एक तरफ तो ज्ञान-संचार की अपेक्षा मनोरंजन अधिक है और दूसरी तरफ ज्ञान-संचार जितना भी है उसमें जानकारी अधिक है। इसका निष्कर्ष यह है कि विज्ञान-संचार के लिये सर्वोत्तम साधन है 'इलैक्ट्रॉनिकी माध्यम में मनोरंजन का उपयोग'। किन्तु यह व्यावहारिक नहीं हो पाता क्योंकि, आज 'फिल्मी' तथा 'पोप' मनोरंजन से टक्कर लेना बहुत कठिन हैं जिसमें एक तरफ सैक्स तथा हिंसा की भरमार होती है, तथा दूसरी तरफ दर्शक की विचार-शक्ति को कुंद कर उसे भोगवादी जानवर बनाया जा रहा हैं तब भी हमें निराश नहीं होना है वरन इस चुनौती का विवेकपूर्ण सामना करना है।

विज्ञान-संचार की अनेक विधाओं में से पौराणिक उपाख्यानों का उपयोग धर्म-प्राण भारतवर्ष में अधिक सफल हो सकता है। पौराणिक उपाख्यानों में विज्ञान-गल्प (साईंस

फिक्शन) की अनेक संभावनाएं हैं और उन उपाख्यानों में प्रतिपादित मान्यताओं में वैज्ञानिक सोच के शोध की भी अनेक संभावनाएं हैं। यहां कुछ उदाहरण उचित होंगे। कथानक का एक उदाहरण तो रामायण के हनुमान तथा सुरसा के प्रसंग का हैं इसमें सुरसा राक्षसी अपना मुंह हनुमान जी के खाने के लिये उनके शरीर से दुगना बड़ा कर लेती है। हनुमान उससे बचने के लिये अपना शरीर दुगना बड़ा कर लेते हैं। यह बड़े होने का मैच उन दोनों के बीच थोड़ी देर जब चलता है तब हनुमान जी एकदम छोटे होकर उसकी पकड़ से छूट कर अपने अभियान पर चल पड़ते हैं। एक तरह से इसे हम कवि की कल्पना कहकर अद्‌भुत मनोरंजन मानकर छोड़ सकते हैं। किन्तु यदि इसके रूपकात्मक अर्थ देखें तो इस कथानक उपाख्यान के अनेक अर्थ निकलते हैं। और कथा का निष्कर्ष निकलता है कि हम भोगवाद से मुकाबला कर जीतकर सुख नहीं प्राप्त कर सकते वरन उससे बिना प्रतियोगिता किये, छोटे बनकर अर्थात् सरल जीवन बिताकर सुख प्राप्त कर सकते हैं।

पुराणों में वर्णित विभिन्न देवी देवताओं के अपने अपने निश्चित वाहन हैं, यथा लक्ष्मी का वाहन उल्लू, कार्त्तिकेय का मयूर, सरस्वती का हंस, गणेश जी का वाहन चूहा इत्यादि। यह तो निश्चित है कि ये वाहन प्रतीक हैं, यथार्थ नहीं। हाथी के सिर वाले, लम्बोदर गणेश जी चूहे पर वास्तव में सवारी तो नहीं कर सकते या लक्ष्मी देवी उल्लू जैसे छोटे पक्षी पर। जब मैंने इन प्रतीकों पर वैज्ञानिक सोच के साथ शोध किया तब मुझे सुखद आश्चर्य पर सुखद आश्चर्य हुए। इस प्रश्न पर कि 'लक्ष्मी का वाहन उल्लू क्यों? एकदम मन में जिज्ञासा जाग उठती है।

उल्लू के लक्ष्मी जी के वाहन होने की संकल्पना कृषि युग की है। वैसे आज भी सत्य है कि किसान अनाज की खेती कर 'धन' पैदा करता है। किसान के दो प्रमुख शत्रु हैं कीड़े और चूहे। कीड़ों का सफाया तो सभी पक्षी करते रहते हैं और उन पर नियंत्रण रखते हैं। किन्तु चूहों का शिकार बहुत कम पक्षी कर पाते हैं। इसलिए कि वे बहुत चपल, चौकस और चतुर होते हैं। इसलिए मुख्यत: बाज वंश के पक्षी और साँप इत्यादि इनके शिकार में कुछ सीमा तक सफल हो पाते हैं। दूसरे, चूहे अपनी सुरक्षा बढ़ाने के लिए रात्रि में फसलों पर, अनाज पर आक्रमण करते हैं और तब बाज तथा साँप आदि भी इनका शिकार नहीं कर सकते। एकमात्र उल्लू कुल के पक्षी ही रात्रि में इनका शिकार कर सकते हैं।

जो कार्य बाज जैसे सशक्त पक्षी नहीं कर सकते, उल्लू किस तरह करते हैं ? सबसे पहले तो रात्रि के अंधकार में शिकार करने के लिए आँखों का अधिक संवेदनशील होना आवश्यक है। सभी स्तनपायी प्राणियों तथा पक्षियों में उल्लू की आँखें उसके शरीर की तुलना में सबसे बड़ी हैं, वरन इतनी बड़ी हैं कि वह आँखों को अपने कोटर में घुमा भी नहीं सकता जैसे कि अन्य सभी पक्षी कर सकते हैं। अब न घुमा सकने वाली कमजोरी को दूर करने के लिए वह अपनी गर्दन तेजी से तथा पूरे पीछे तक घुमा सकता है।

जब उल्लू या कोई भी पक्षी चूहे पर आक्रमण करते हैं, तब उनके उड़ान की फड़फड़ाहट को सुनकर चूहे चपलता से भाग कर छिप जाते हैं। इसलिए बाज भी चूहों का

शिकार अपेक्षाकृत खुले स्थानों में कर सकते हैं ताकि वे भागते हुए चूहों को भी पकड़ सकें। किन्तु चूहे अधिकांशतया खुले स्थानों के बजाय लहलहाते खेतों या झाड़ियों में छिपकर अपना आहार खोजते हैं। वहां यदि चूहे ने शिकारी पक्षी की फड़फड़ाहट सुन ली तो वे तुरन्त कहीं भी छिप जाते हैं। उल्लू की दूसरी अद्वितीय योग्यता है कि उसके उड़ते समय फड़फड़ाहट की आवाज नहीं आती। यह क्षमता उसके पंखों के अस्तरों के नरम रोमों की बनावट के कारण आती है।

उल्लू की तीसरी आवश्यकता होती है तेज उड़ान की क्षमता के साथ धीमी उड़ान की भी। यह तो हम विमानों के संसार में भी हमेशा देखते हैं कि तेज उड़ान वाले विमान की धीमी गति भी कम तेज उड़ने वाले विमान की धीमी गति से तेज होती है। तेज उड़ान की आवश्यकता तो उल्लू को अपने बचाव के लिए तथा ऊपर से एक बार चूहे को 'देखने' पर तेजी से चूहे तक पहुंचने के लिए होती है तथा झाड़ियों आदि के पास पहुंचकर धीमी उड़ान की आवश्यकता इसलिए होती है कि वह उस घिरे स्थान में चपल चूहे की बदलती दिशाओं में भागने के बावजूद पकड़ सके। यह योग्यता भी उल्लू में है, बाज पक्षियों में नहीं।

यदि चूहा अधिकांशतया लहलहाते खेतों में या झाड़ियों में छिपते हुए अपना कार्य करता है तब उड़ते हुए पक्षी द्वारा उसे देखना तो दुर्लभ ही होगा। चूहे आपस में चूं चूं करते हुए एक दूसरे से सम्पर्क रखते हैं। क्या एक महीन तथा धीमी चूं चूं कोई पक्षी सुन सकता है? उल्लू न केवल सुन सकता है वरन सबसे अधिक संवेदनशीलता से सुन सकता है। चूहे की चूं चूं की प्रमुख ध्वनि—आवृत्ति ८००० हर्टज़ होती है और उल्लू के कानों की श्रवण शक्ति ८००० हर्टज़ पर अधिकतम संवदेनशील होती है। यह हुई उल्लू की चौथी अद्वितीयता। उल्लू में एक और गुण है जो उसके काम में आता है। चूंकि उसे शीत ऋतु की रातों में भी उड़ना पड़ता है, उसके अस्तर के रोएं उसे भयंकर शीत से बचाने में सक्षम हैं।

इन सब गुणों के बल पर पृथ्वी पर चूहों का सर्वाधिक सफल शिकार उल्लू ही करते हैं और चूहे किसानों के अनाज का सर्वाधिक नुकसान कर सकते हैं। इसलिए उल्लू किसानों के अनाज में वृद्धि करते हैं, अर्थात् वे उसके घर में लक्ष्मी लाते है। अत: लक्ष्मी का वाहन उल्लू है। इसकी उपरोक्त चार योग्यताओं के अतिरिक्त, जो कि वैज्ञानिक विश्लेषण में समझ आई हैं, लक्ष्मी का एक सामाजिक गुण भी है जिसके फलस्वरूप उल्लू लक्ष्मी का वाहन बन सका है। किसी व्यक्ति के पास कब अचानक लक्ष्मी आ जाएगी और कब चली जाएगी, कोई नहीं जानता — प्रेम जी अचानक कुछ महीने भारत के सर्वाधिक धनवान व्यक्ति रहे, और अचानक 'साफ्टवेअर' उद्योग ढीला पड़ने के कारण वे नीचे गिर गए। चूंकि उल्लू के उड़ने की आहट भी नहीं आती, अतएव लक्ष्मी उस पर सवार होकर कब आ जाएंगी या चली जाएंगी, पता नहीं चलता।

यद्यपि हमारे ऋषियों के पास वैज्ञानिक उपकरण नहीं थे, तथापि उनकी अवलोकन दृष्टि, विश्लेषण करने और संश्लेषण करने की शक्ति तीव्र थी। उल्लू को श्री लक्ष्मी जी का वाहन बनाना यह सब हमारे ऋषियों की तीक्ष्ण अवलोकन दृष्टि, घटनाओं को समझने की

वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक–हित की भावना दर्शाता है। आमतौर पर उल्लू को लोग निशाचर मानते हैं, उसकी आवाज को अपशकुन मानते हैं, उसे खंडहर बनाने वाला मानते हैं। इसलिए आम लोगों के मन में उल्लू के प्रति सहानुभूति तथा प्रेम न होकर घृणा ही रहती है। इस दुर्भावना को ठीक करने के लिए भी उल्लू को लक्ष्मी का वाहन बनाया गया। यह उदाहरण कोई एक अकेला उदाहरण नहीं है। सरस्वती का वाहन हंस, कार्तिकेय का वाहन मयूर, गणेश जी का वाहन चूहा भी वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत समाजोपयोगी संकल्पनाएं हैं। इन अवधारणाओं का प्रचार अत्यंत सीमित होता यदि इन्हें पुराणों में रखकर धार्मिक रूप न दिया होता। इसलिए इस देश में उल्लू, मयूर, हंस, सारस, चकवा, नीलकंठ, तोता, सुपर्ण (गरुड़), मेंढक, गिद्ध आदि को, और वृक्षों को, जंगलों को इस तरह धार्मिक उपाख्यानों से जोड़कर, उनकी रक्षा अर्थात् पर्यावरण की रक्षा हजारों वर्षों से की गई है। किन्तु अब अंग्रेजी की शिक्षा ने तो हमारी आज की पीढ़ी को इस सब ज्ञान से काट दिया है। आज हम भी पाश्चात्य संसार की तरह प्रकृति का शोषण करने में लग गये हैं। पर्यावरण एवं प्रकृति का संरक्षण जो हमारी संस्कृति में रचा बसा था, उसे हम भूल गए हैं। यह संरक्षण की भावना, अब कुछ पाश्चात्य प्रकृति-प्रेमियों द्वारा वापिस लाई जा रही है। एक बात तो स्पष्ट करना आवश्यक है कि इन प्रतीकों का वैज्ञानिक तथा सामाजिक के अतिरिक्त आध्यात्मिक अर्थ भी होता है।

निष्कर्ष यह है कि हमारी पुरानी संस्कृति में वैज्ञानिक सोच तथा समझ है, उसके अन्तर्गत हम विज्ञान पढ़ते हुए आधुनिक बनकर 'पोषणीय उन्नति' (सस्टेनैबल प्रोग्रैस) कर सकते हैं। आवश्यकता है विज्ञान के प्रभावी संचार की जिस हेतु पुराणों के उपाख्यान एक उत्तम दिशा दे सकते हैं। इस तरह हम मैकाले की शिक्षा नीति (फरवरी, १८३५) – "ब्रिटिश शासन का महत् उद्देश्य भारत में एवं उपनिवेशों में यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार-प्रसार करना होना चाहिए।" के द्वारा व्यवहार में भ्रष्ट की गई अपनी उदात्त संस्कृति की पुनर्स्थापना कर सकते हैं। वे विज्ञान का प्रसार तो कम ही कर पाए यद्यपि अंग्रेजी का प्रचार-प्रसार करने में उन्होंने आशातीत सफलता पाई। हमारा उद्देश्य पाश्चात्यों की नकल करना छोड़कर, भारतीय भाषाओं में ही प्रौविज्ञान का प्रचार-प्रसार करना होना चाहिए और तभी वह अधिक सफल भी होगा। तभी हम प्रौविज्ञान के क्षेत्र में, वास्तव में, अपनी अनुसन्धान शक्ति से, विश्व के अग्रणी देशों में समादृत नाम स्थापित कर सकेंगे। तब हम और भी अधिक गर्व से कह सकेंगे कि हम हिन्दू हैं। वैसे यह भी आज के दिनों में कम गर्व की बात नहीं कि विश्व में केवल हिन्दू धर्म है जो सर्वाधिक विज्ञान-सम्मत है।

एयर वाइस मार्शल
ई–१४३/२१, नौएडा, २०१३०१

भगवान महादेव पर बिजली पात

• विद्या धर नेगी

परमपिता परमात्मा की लीला को परमात्मा ही जानते हैं, फिर भी मनुष्य इस लीला को समझने का हमेशा प्रयत्न करता है और जहां तक हो सके अपनी जिज्ञासा की पूर्ति करता है। कुल्लू जिला में जिला मुख्यालय कुल्लू के सामने व्यास नदी के बायें ओर की पहाड़ी के पूर्वी दक्षिणी छोर पर मथाण नामक स्थान है जहां बिजली महादेव का पावन स्थान है। भगवान् महादेव का एक अन्य स्थान मथाण की पहाड़ी के समानान्तर पार्वती नदी के बाएं ओर की पहाड़ी के आंचल में छैऊंर नामक स्थान पर है। इन दोनों स्थानों पर आज भी शिवलिंग पर आकाशीय बिजली गिरती है और बिजली पात होने से खण्डित शिवलिंग को विधान के अनुसार जोड़ा जाता है जिससे शिवलिंग ठोस रूप में पूरित हो कर एकमेव हो जाता है। शिवलिंग कैसे पुनः अखण्ड रूप हो जाता है, यह दिव्यविज्ञान का रहस्य है जो इन्द्रियातीत है। आधुनिक विज्ञान का इसकी थाह पाना सम्भव नहीं है।

इन दोनों स्थानों के महादेवों पर बिजली पात होने के कारण मथाण के महादेव बिजली महादेव के नाम से प्रसिद्ध हैं और छैऊंर के महादेव को बिजलेश्वर महादेव कहा जाता है। बिजली गिरने की प्रक्रिया और उसके बाद का विधान दोनों स्थान पर कुछ भिन्न है। बिजली महादेव में बिजली पात जल्दी-जल्दी दूसरे-तीसरे वर्ष होता है, परन्तु बिजलेश्वर महादेव छैऊंर में सात-आठ वर्षों के अन्तराल में बिजली गिरती है। एक अन्य विशेष भिन्नता यह है कि बिजली महादेव में घनघोर वर्षा में घोर गर्जना के साथ बिजली गिरती है, लेकिन बिजलेश्वर महादेव में बिना वर्षा के जब आसमान बिल्कुल साफ होता है, तब बिना किसी ध्वनि के शिवलिंग पर वज्रपात होता है। बिजली महादेव में शिवलिंग के अतिरिक्त कभी-कभी मन्दिर या ध्वज स्तम्भ पर बिजली गिरती है, लेकिन बिजलेश्वर महादेव में यह केवल शिवलिंग पर गिरती है।

आकाश बिजली से खण्डित शिवलिंग को मक्खन के लेप से जोड़ कर उसे किलटे (पीठ पर सामान उठाने का उपकरण जो बांस की एक प्रजाति 'नगाल' का बनता है) से ढक दिया जाता है। लेप हेतु मक्खन देवता के आराधक प्रजा क्षेत्र के गांव से इकट्ठा होता है। बिजली महादेव में शिवलिंग के एक ठोस रूप में आने तक जप-पाठ का कार्यक्रम होता है। छैऊंर में जप-पाठ नहीं होता। यहां पूरे गांव में शोक मनाया जाता है। जब तक शिवलिंग पूरा नहीं होता तब तक कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता। यदि कोई विवाह अनुष्ठान आदि पूर्व निश्चित हो तो उसे भी स्थगित कर दिया जाता है। इस शोक काल में दिन में एक बार भोजन किया जाता है। शिवलिंग के बिखरे कंकरों में एक भी कंकर बाहर रह जाए तो शिवलिंग से कराहने की आवाज आती है। ऐसे बाहर रहे कंकरों में भी कराहने की आवाज़ होती है जिससे कंकर ढूंढ लिए जाते हैं। कभी पुजारी को स्वप्न में भी बिखरे पड़े कंकर की जगह

बता दी जाती है। बिजली महादेव मथाण में कंकर कई बार बहुत दूर जा गिरते हैं। बिजलेश्वर महादेव छैऊंर में यह प्राय: मन्दिर के अन्दर ही बिखरते हैं। कभी-कभार कोई कंकर मन्दिर के बाहर गिरता है जो कि नज़दीक में ही होता है। खण्डित शिवलिंग ३—५—७—९—११ दिनों में पूरा होता है। कभी-कभार ११ से अधिक दिन दैवी व्यवधान के कारण लगते हैं। पीछे फरवरी, २००८ मे छैऊंर में बिजली पात हुआ था। इसका बहुत प्रचार-प्रसार हुआ। प्रचार माध्यमों के आदमी वहां पहुंचे और वहां पूछताछ की गई। इस प्रकार का अधिक प्रचार-प्रसार होना अच्छा नहीं समझा गया। इसलिए शिवलिंग को पूरा आकार लेने में अधिक समय लगा।

बिजलेश्वर महादेव छैऊंर के बारे में कुछ और बातें भी उल्लेखनीय हैं। बिजलेश्वर महादेव अपने क्षेत्र में सुख-समृद्धि का आशीर्वाद देने प्रतिवर्ष भ्रमण पर निकलते हैं। जब देवता भ्रमण पर होता है तो पुजारी उनके साथ होता है और पीछे मन्दिर में पूजा पुजारी का लड़का करता है। एक बार देवता भ्रमण पर था। जब पुजारी का लड़का मन्दिर में पूजा करते समय घण्टी बजाने लगा तो घण्टी में आवाज आनी बन्द हो गई। पुजारी का लड़का हैरान हुआ। वह जहां देवता भ्रमण में था, वहां पहुंचा और उसने अपने पुजारी पिता को यह घटना बताई। पुजारी वहां से मन्दिर आया और देखा कि शिवलिंग बिजली गिरने से खण्डित हो गया है। यह बहुत कम खण्डित था जिससे पुजारी के लड़के को इसका पता नहीं चल सका। यह मालूम होने पर पुजारी ने तुरन्त कारदार को सूचना भेज दी कि मन्दिर में कुछ घटना घटी है, देवता को वापिस ले आएं। कारदार सूचना का अर्थ समझ गया। उसने देवता के रथ पर पर्दा डलवा दिया। बाजा-बजन्तर बजाना बन्द करवाया और परिभ्रमण अधूरा छोड़ कर देवता को वापिस मन्दिर में लाया गया। बाजा बजाना बन्द कर के देवता को पर्दा डाल कर इसलिए लाया गया कि शिवलिंग खण्डित होने पर शोक छा गया था।

शिवलिंग के खण्डित होने पर इसे जोड़ने की प्रक्रिया में इस पर कपड़े का पर्दा भी डाला जाता है। छैऊंर में पर्दा डालने के लिए कपड़ा मणिकर्ण घाटी की प्रसिद्ध भगवती पढ़ेई माता देती है। इसके साथ ही पर्दे के लिए १८ गज कपड़ा राजा कुल्लू की ओर से भी दिया जाता है। इसलिए बिजली पड़ने की सूचना तत्काल पढ़ेई माता और राजा कुल्लू को दी जाती है। पढ़ेई माता द्वारा पर्दे का कपड़ा देना पहले से चली आ रही परम्परा है। राजा कुल्लू के साथ यह परम्परा कैसे जुड़ी इस सम्बन्ध में एक प्रसंग बतलाया जाता है।

कहते हैं कि जब राजा कुल्लू मणिकर्ण घाटी के दौरे पर निकलते थे तो छैऊंर गांव के लोग जछणी नामक स्थान पर राजा का स्वागत बाजे-गाजे के साथ करते थे। एक बार राजा कुल्लू मणिकर्ण जा रहे थे तो जछणी में उस बार छैऊंर से कोई उनका स्वागत करने नहीं पहुंचा। राजा ने क्रोधित हो कर इसके बारे में पूछताछ की तो पता चला कि गांव में शिवलिंग के खण्डित होने के कारण शोक व्याप्त है। इस समय बाजे-गाजे बजा कर किसी भी उल्लास के कार्य पर प्रतिबन्ध है जिससे लोग स्वागत में नहीं आ पाए। राजा कुल्लू बिजलेश्वर महादेव मन्दिर में पहुंच गया और वहां आदेश दिया कि उन्हें शिवलिंग दिखाया

जाए। राजा के आदेश का विरोध करने की हिम्मत किसी में नहीं थी। पर्दा हटा कर राजा ने शिवलिंग की जांच की और उसके बाद आगे प्रस्थान कर गए। कुछ मार्ग तय करने के उपरान्त राजा के हाथ की एक अंगुली में बहुत दर्द हो गया जिसे सहन करना कठिन हो गया। राजा को अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने वापिस मन्दिर में आ कर महादेव से क्षमा मांगी और शिवलिंग पर नया कपड़ा डालने के लिए १८ गज कपड़ा प्रदान किया। उसके बाद कुल्लू का राज-परिवार इस स्थापित परम्परा का आज तक निरन्तर पालन करता आ रहा है।

बिजलेश्वर महादेव का खण्डित शिवलिंग जब पूर्वस्थिति में आ जाता है तो गांव में शोक समाप्त हो जाता है। तब मन्दिर में हवन, पाठ और ब्रह्म भोज का आयोजन होता है। भगवान् महादेव के शिवलिंग पर बिजली क्यों गिरती है ? इस सम्बन्ध में लोकमान्यता है कि जब सृष्टि पर कोई घोर संकट आता है तो भगवान् शिव जगत कल्याण के लिए उस संकट को अपने ऊपर ले लेते हैं और संकट का शमन कर के सृष्टि की रक्षा करते हैं। एक मान्यता यह भी है कि जब ब्रह्मा और विष्णु में विवाद हुआ कि उनमें बड़ा कौन है तो शिव ने एक विराट लिंग का रूप धारण कर के ब्रह्मा को उसके सिरे का पता लगाने को कहा और विष्णु को लिंग के मूल का पता लगाने का आदेश हुआ। निश्चित अवधि में दोनों को कुछ भी पता नहीं चला। दोनों वापिस लौटे। शिव के पूछने पर ब्रह्मा जो पंचमुख थे, ने झूठ बोला कि उसने सिरे का पता लगा दिया है और कहा कि उसने लिंग के सिरे पर केतकी का फूल देखा। विष्णु को पूछा तो उन्होंने सच बता दिया कि वह मूल का पता नहीं लगा सके। भगवान् विष्णु ने सत्य धर्म का पालन किया, इसलिए उन्हें भगवान् शिव ने भगवान् सत्य नारायण के नाम से विभूषित किया। ब्रह्मा ने जिस पांचवें मुख से झूठ बोला था उस मुख का शिव भगवान् ने वध कर दिया। तभी से ब्रह्मा चतुर्मुख हुए। पांचवें मुख के वध से शिव को ब्रह्म हत्या का पाप लगा। उस पाप से मुक्ति के लिए शिव के ऊपर बिजली पात होता है।

इस कथानक में भगवान् विष्णु और ब्रह्मा को सच और झूठ के प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है। यहां जगत कल्याण के सद्मार्ग का पोषण रखने के लिए सत्य धर्म के रक्षणार्थ और झूठ का विनाश करने के लिए भगवान शिव ने हत्या जैसे संकट को भी अंगीकार किया। सत्य की रक्षा और असत्य का नाश ऐसे ही दृढ़ निश्चय से सम्भव है, यही इस कथानक का मंगल संदेश है।

भगवान् शिव के इस कल्याणकारी करुणावतार रूप की शक्ति माता भवानी के साथ भक्तजन वन्दना करते हैं –

कर्पूरगौरं करूणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि।।

अर्थात् गौर वर्ण, करुणावतार, संसार के मूल कारण, गले में सांपों का हार पहने, हृदय में सदा विराजमान शक्ति माता पार्वती और भगवान् शिव के चरणों में प्रणाम् है।

गांव उपरला मौहल
डाकघर मौहल, जिला कुल्लू–१७५१२६, हि.प्र.

ध्येय पथ

सुजानपुर में राष्ट्रीय परिसंवाद

ठाकुर जगदेव स्मृति शोध संस्थान समिति, नेरी द्वारा ज़िला हमीरपुर के ऐतिहासिक नगर सुजानपुर में ***"अलंकार मार्तण्ड महाराजा संसार चन्द और उनका युग"*** विषय पर कार्तिक शुक्ल १३, १४, १५ कलियुगाब्द ५१११ इस्वी सन् अक्तूबर ३१, नवम्बर १ ,२, २००९ को तीन दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन किया गया। इस परिसंवाद के उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि प्रो. प्रेम कुमार धूमल, माननीय मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश तथा सांसद श्री शान्ता कुमार ने इस समारोह की अध्यक्षता की। भारत में मंगोलिया के राजदूत महामहिम बोरोशिलोव ऐंखबोल्ड इस कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के रूप में सम्मिलित हुए।

इस अवसर पर शोध संस्थान, नेरी के संस्थापक संरक्षक श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी ने विषय प्रवर्तन करते हुए कहा कि मानव की उत्पति भारत में हुई थी। उन्होंने बताया कि १९७ करोड़ वर्ष पूर्व हिमालय में विद्यमान सुमेरू पर्वत पर पहली मानव सभ्यता पनपी थी। पृथ्वी के पहले राजा ब्रह्मा थे और मनुवति उनकी राजधानी थी। ठाकुर राम सिंह जी ने कहा कि नेरी शोध संस्थान का उद्देश्य इतिहास पर पड़े पर्दे को हटाना है। भारत का प्रथम मानव उत्पत्ति से लेकर वर्तमान तक इतिहास लिखना हमारा उद्देश्य है। उन्होंने कहा कि भारत का इतिहास गौरवपूर्ण रहा है। भारत के इस गौरव पूर्ण इतिहास को विकृत करने के प्रयास किये गये हैं। उन्होंने कहा कि मानव सभ्यता को पैदा करने वाले मनु का जन्म स्थान मनाली में हैं। ठाकुर राम सिंह ने कहा कि भारत के इतिहास पर विदेशी पर्दा पड़ा हुआ है जिसे हटाने का बीड़ा नेरी शोध संस्थान ने उठाया है।

शोध पर आधारित इतिहास के पुनर्लेखन की नितांत आवश्यकता — प्रो० प्रेम कुमार धूमल

हिमाचल प्रदेश के मुख्यमन्त्री प्रो. प्रेम कुमार धूमल ने अपने उद्बोधन में कहा कि हमारे लिये यह सौभाग्य और गौरव की बात है कि देश का अनूठा संस्थान हिमाचल में प्रारम्भ हुआ है। यह संस्थान देश का ही नहीं विश्व का संस्थान उभर कर सामने आएगा। प्रो. धूमल ने कहा कि दुनियां में अनेक सभ्यताएं आई और समाप्त हुई। हमारी सभ्यता को मिटाने का प्रयास ही नहीं हुआ बल्कि मिटाने के लिए हमारे आत्मविश्वास को डगमगाने का प्रयास भी किया गया और यह सब अब तक हो रहा है। प्रो. धूमल ने कहा कि शोधकर्ताओं के शोध पर आधारित इतिहास के पुनर्लेखन की नितांत आवश्यकता है। ऐसे कुछ ऐतिहासिक तथ्य हैं जो आंकड़ों से मेल नहीं खाते तथा वर्तमान पाठ्यक्रमों में पढ़ाया जाने वाला इतिहास वास्तविक तथ्यों से परे हैं। इतिहास के वास्तविक तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर पेश किये गए तथ्यों को सुधार कर पुनर्लेखन की नितांत आवश्यकता है।

इतिहास समाज का दर्पण होता है — शान्ता कुमार

इस अवसर पर पूर्व मुख्यमन्त्री एवं सांसद श्री शान्ता कुमार ने कहा कि इतिहास किसी जाति व समाज का दर्पण होता है। यदि दर्पण मैला हो तो उस दर्पण में अपना चेहरा देखने वाले का चेहरा भी उखड़ा सा नज़र आता है। इसलिए किसी भी समाज की पहचान उस का इतिहास है। शान्ताकुमार ने कहा कि अंग्रेज चतुर थे। भारत का स्वाभिमान खत्म करने के लिए उन्होंने कहा कि आर्य बाहर से आए हैं और हमारे विद्वानों ने भी स्वीकर कर लिया कि आर्य बाहर से आए। आर्य बाहर से आए यह किसी भी ग्रन्थ में नहीं लिखा है। यदि आर्य बाहर से आये होते तो किसी ग्रन्थ में तो उसका जिक्र होता। अंग्रेजों ने इतना बड़ा झूठ बोला और हमने मान लिया।

आज भारत का इतिहास अनेक विकृतियों से भरा पड़ा है और उसे दूर करने की बड़ी आवश्यकता है। स्वतन्त्रता के पश्चात देश में दुष्प्रचार हुआ कि बिना खून बहाए स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है। उन्होंने कहा कि देश की आज़ादी के लिए अंहिसा के मार्ग पर चलने वाले महात्मा गान्धी का जिताना योगदान है उतना ही योगदान सशस्त्र क्रान्तिकारियों का भी है। श्री शान्ता कुमार जी इस कार्यक्रम की अध्यक्षा की।

भारत मंगोलिया के लिए एक पवित्र देश है — बोरोशिलोव एंखबोल्ड

समारोह के विशिष्ट अतिथि मंगोलिया के राजदूत बोरोशिलोव ऐंखबोल्ड ने अपने उद्‌बोधन में अपने देश के भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पक्षों पर विचार रखे। उन्होंने कहा कि भारत मंगोलिया के लिए एक पवित्र देश है। मंगोलिया देश की प्रगति में भारत के योगदान और मंगोलिया देश के भारत के साथ अच्छे सम्बन्धों की भी उन्होंने अपने उद्‌बोधन में चर्चा की। विष्णु पुत्र मंगल द्वारा मंगोलिया देश को बसाने तथा पूर्व में मंगोलिया देश के किसी पूर्वज द्वारा कटोच वंश की स्थापना के सन्दर्भ में ठाकुर रामसिंह द्वारा उठाए गए अपने शोध के पक्षों पर चर्चा करते हुए राजदूत ने विशेष रूचि दिखाई और कहा कि इतिहास के ये प्रसंग दोनों देशों की मित्रता और उन्नति में विशेष सहायक होंगे तथा इस पर तथ्यपरक शोध होना चाहिए। उन्होंने समारोह के विशिष्ट अतिथि बनाए जाने पर आयोजकों का धन्यवाद किया।

स्मारिका एवं पुस्तकों का लोकार्पण

उद्‌घाटन समारोह में परिसंवाद से सम्बन्धित शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित स्मारिका का लोकार्पण किया गया तथा डॉ. ओम प्रकाश शर्मा की पुस्तक *'संस्कृत साहित्य का हिमाचल को योगदान'*, राजस्थान के डॉ. ओमप्रकाश गर्ग 'मधुप' की पुस्तक *'अग्रवंशकर्तार का युग'* और श्री गोपाल शर्मा शास्त्री की पुस्तक *हिमाचल प्रशस्ति (नवम् भाग) कुल्लू काव्य'* का भी लोकार्पण किया गया।

कटोचवंश के वर्तमान प्रतिनिधि श्री आदित्य देव कटोच द्वारा टोपी पहनाकर सभी प्रतिभागी विद्वानों का स्वागत

त्रिदिवसीय परिसंवाद के प्रथम सत्र में कटोच वंश के वर्तमान प्रतिनिधि श्री आदित्य देव कटोच द्वारा परिसंवाद के सभी प्रतिभागी विद्वानों को टोपी पहनाकर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर पूज्य महंत सूर्यनाथ जी तथा भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश के निदेशक श्री प्रेम शर्मा भी उपस्थित थे। तदोपरान्त तीन दिन तक शोध पत्र वाचन और उन पर

व्यापक परिचर्चा हुई। जिसमें दिल्ली के डॉ. लक्ष्मीश्वर झा, सुश्री चारु मित्तल, प्रो. सतीश चन्द्र, श्रीमती कल्पना गर्ग, श्रीमती मुदिता गुप्ता, डॉ. नूतन पाण्डेय, उत्तर प्रदेश गाजियाबाद से श्री कृष्णानन्द सागर, जम्मू से डॉ. एम.डी. डोगरा, वाडमेर राजस्थान से श्री ओमप्रकाश गर्ग 'मधुप', गुड़गांव हरियाणा से श्रीमती नीना गुप्ता, रोपड़ पंजाब से श्री महेन्द्र जैन, ने अपने शोध पत्र पढ़े।

हिमाचल प्रदेश के विद्वानों में डॉ. चमन लाल गुप्ता, डॉ. कुलदीप अग्नि होत्री, डॉ. विद्याचन्द ठाकुर, डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, डॉ. रमेश शर्मा, डॉ. एस के बंसल, डॉ. गोपाल कृष्ण, डॉ. हिमेन्द्र बाली, श्रीमती सुरभि बाली, श्री राकेश शर्मा, श्री बी एन कौशल, श्रीमती गंगा शर्मा, श्री चेतराम गर्ग आदि विद्वानों ने भाग लिया।

परिसंवाद के मध्य में दो बार पावर पंवाईंट प्रस्तुतियां भी हुई। प्रथम प्रस्तुति 'लुप्त हुई ऋग्वैदिक सरस्वती नदी की खोज' विषय पर श्री विजय मोहन कुमार पुरी की थी और दूसरी प्रस्तुति डॉ. भागचन्द चौहान की वेदों में विज्ञान विषय पर थी।

परिसंवाद का एक प्रमुख आकर्षण वैदिक सभ्यता के गौरवशाली इतिहास की प्रदर्शनी थी जिसका उद्घाटन प्रथम दिन मंगोलिया के राजदूत श्री एंखबोल्ड ने किया। इस प्रदर्शनी में भारतीय कालगणना के तत्त्वों, वैदिक सभ्यता के ऋषि मुनियों, वैज्ञानिकों तथा देवी देवताओं के सुन्दर चित्र और दुर्लभ अभिलेख प्रदर्शित थे। प्रदर्शनी का सारा समायोजन अश्व आर्ट के श्री अश्वनी शर्मा ने किया था। इस प्रदर्शनी के अंतर्गत ही डॉ. एस के बंसल द्वारा तैयार कांगड़ा दुर्ग

मध्य हिमालय जलागम विकास परियोजना

मध्य हिमालय जलागम विकास परियोजना को विश्व बैंक के सहयोग से प्रदेश के 10 जिलों के 42 विकास खण्डों की 602 पंचायतों में कार्यान्वित किया जा रहा है ।

परियोजना का मुख्य उददेश्य प्राकृतिक संसाधनों में हो रहे ह्रास की प्रक्रिया में कमी लाना, उत्पादन क्षमता में बढौतरी व निर्धन परिवारों की सम्पन्ता हेतु आजीविका के अतिरिक्त अवसरों में वृद्धिकरना है ।

परियोजना का मुख्य आकर्षण स्थानीय लोगों एवं ग्राम पंचायतों द्वारा जन सहभागिता के आधार पर प्राकृतिक संसाधनों का नियोजन, कार्यान्वयन, संचालन तथा रख रखाव करना है ।

जलागम अधिग्रहण क्षेत्र के विकास के लिये पौधारोपण, भू–सरंक्षण कार्य, लघु सिंचाई एवं पेय जल योजना, कृषि, बागवानी, पशुपालन, मूलभूत संसाधनों जैसे कि पैदल रास्तों और पुलों का निर्माण आदि कार्य किये जा रहे हैं ।

जल को ग्रामीण विकास का केन्द्र बिन्दु अंकित कर जल संसाधनों को विकास कर नकदी फसलों व औषधीय पौधों के रोपण को प्रोत्साहित किया जा रहा है ।

महिलायों, संसाधन विहीन और जन जातीय समुदाय के लोगों की आजीविका उर्पाजन पर विशेष बल देते हुये लगभग 20 हजार गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया है ।

सूचना एवं प्रौद्योगिकी की महत्वत्ता को देखते हुये प्रबन्धन एवं सूचना पद्धति (MIS) व वित्तीय प्रबन्धन (FMS) सॉफ्टवेयर विकसित एवं स्थापित किया गया है जो परियोजना को गतिशीलता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं । विभिन्न सूचनाओं से सुसज्जित परियोजना बैब साईट का लोकार्पण व परियोजना का आकर्षक त्रिमासिक पत्र, मध्य हिमालय जलागम दर्पण आरम्भ किया गया है ।

परियोजना द्वारा विभिन्न जलागम विकास एवम् उपचार गतिविधियों के पड़ने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक विधि से मूल्यांकन व विश्लेषण तीन गाद व वर्षा मापक स्वचालित इलेक्ट्रानिक यंत्रों से किया जा रहा है ।

परियोजना में सामुदायिक आधारित समूहों के गठन पर विशेष बल दिया जा रहा है जिससे स्वावलम्बी ग्रामीण व्यवस्था एवं सतत् विकास को सुनिश्चित किया जा सके ।

क्रमसं	परियोजना गतिविधि	ईकाई	उपलब्धियां	क्रमसं	परियोजना गतिविधि	ईकाई	उपलब्धियां
1	पौधरोपण	हैक्टेयर	8120	6	पैदल रास्तों का निर्माण	कि0मी0	704
2	वर्षा जल के छत के टैंक	संख्या	4882	7	पैदल पुलों का निर्माण	संख्या	268
3	बांध (मिट्टी / कंकरीट)	संख्या	127	8	पेयजल आपूर्तिरूपये	(करोड में)	3.08
4	लघु सिंचाई योजनाएं	संख्या	221	9	खुरली निर्माण	संख्या	13115
5	कुहल निमार्ण मुरम्मत	कि0मी0	197				

अधिक जानकारी के लिये लॉग आन करें : ***www.hpmidhimalayan.org***

DISTRICT RURAL DEVELOPMENT AGENCY SHIMLA IMPLEMENTATION OF TOTAL SANITATION CAMPAIGN (TSC) Till MARCH 2009

S No.	Component	No. of Units	Rate (Rs. In Lacs)	Funds Provision as per Guidelines				Till March 2009
				Centre	State	Beneficiary	Total	
1.	C/o Ind Toilets (APL)	53231	--	--	--	--	--	31534
2.	C/o Ind Toilets (BPL)	23874	0.027	214.87	71.62	71.62	358.11	12253
3.	C/o Community Toilets	50	2.00	60.00	20.00	20.00	100.00	20
4.	School Toilets	2489	0.20	348.46	149.34	--	497.90	987
5.	Anganwari Toilets	923	0.05	32.31	13.85	--	46.16	335
6.	Revolving Funds			40.00	10.00	--	50.00	-
7.	Start Up & IEC			176.00	44.00	--	220.00	--
8.	Admn. Charges			56.00	14.00	--	70.00	--
9.	Solid & Liquid Waste Mgt.			87.00	29.00	29.00	145.00	--
	Grand Total			1014.64	351.81	120.62	1487.07	

The revised project was sanctioned for the District with a total cost of Rs. 1487.07 lacs. Under the project proposal it will be ensured that every household in the district (including provision of toilets in Schools, Anganwaris & Community places) must own toilet till 2010. For BPL family there is a provision of incentive of Rs. 2700/- for C/o toilet. But the focus of the project is to educate the masses about the ill effects of defecating in open and health hazards created by not using toilets. In Shimla District till March 2009, 145 GPs out of 363 GPs in the district have become ODF, which includes 48 GPs awarded NGP during 2008-09 a prestigious award given by the President of India on passing certain parameters fixed by Govt. of India. This year district aims to declare all the remaining GPs ODF and every effort will be made to declare district open defecation free (ODF) by March 2010. The Gram Panchyat Neen of Basantpur Block was adjudged best ODF Panchayat of the State for the year 2007-08 for which cash award of Rs. 10.00 lacs was given by State Govt. to the panchayat.

-sd-
Deputy Commissioner
-cum-
CEO DRDA Shimla (H.P.)

एस जे वी एन

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को उर्जावान बनाने के प्रति वचनबद्ध

एसजेवीएन को विद्युत क्षेत्र में अग्रिम पंक्ति में पहुँचाना और भारत को भविष्य में प्रचुर विद्युत उपलब्धता वाला राष्ट्र बनाने की हमारी दूरदृष्टि है, जो हमारा प्रेरणा-स्रोत है और इसी परिप्रेक्ष्य में एसजेवीएनएल ने लगभग बीस वर्ष पहले विद्युत क्षेत्र में प्रवेश किया था।

हम अपने अति सफल और देश के सबसे बड़े 1500 मेगावाट क्षमता के नाथपा झाकड़ी जल विद्युत पावर स्टेशन के जरिए **सन 2003** से भारत की प्रगति को ऊर्जावान बनाए हुए हैं।

कंपनी की 412 मेगावाट क्षमता की रामपुर जल विद्युत परियोजना हिमाचल प्रदेश में तेजी से पूर्णता की ओर अग्रसर है।

अन्य अन्वेषण एवं निर्माणाधीन परियोजनाओं से विद्युत उत्पादन क्षमता में अतिरिक्त 2962 मेगावाट की वृद्धि होगी।

एसजेवीएन विश्व पटल पर

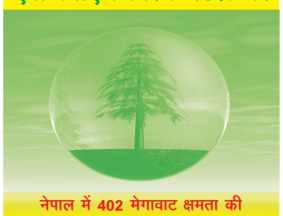

नेपाल में 402 मेगावाट क्षमता की अरुण-III विद्युत परियोजना हासिल की।

भारत से बाहर खुले प्रतिस्पर्धात्मक आधार पर कोई जल विद्युत परियोजना हासिल करने वाला एसजेवीएन विद्युत क्षेत्र के सार्वजनिक उद्यमों में पहला संगठन है।

भारत सरकार ने डी.पी.आर के लिए अन्य प्रोजेक्ट प्रदान किये

486 मैगावाट खोलोंगचू विद्युत परियोजना भूटान में
900 मैगावाट वोंगचू विद्युत परियोजना भूटान में

अन्वेषण एवं निर्माणाधीन परियोजनाएँ:

* हि.प्र. में लूहरी जलविद्युत परियोजना (775 मेगावाट)
* हि.प्र. में खाब जलविद्युत परियोजना (1020 मेगावाट)
* उत्तराखण्ड में देवसारी जलविद्युत परियोजना (252 मेगावाट)
* उत्तराखण्ड में जाखोल सांकरी जलविद्युत परियोजना (45 मेगावाट)
* उत्तराखण्ड में नैटवार मोरी जलविद्युत परियोजना (56 मेगावाट)
* हि.प्र. में धौलासिद्ध जलविद्युत परियोजना (56 मेगावाट)
* मणिपुर में तिपाईमुख जलविद्युत परियोजना (1500 मेगावाट)
* नेपाल में अरुण III जलविद्युत परियोजना (402 मेगावाट)
* भुटान में खौलोंगचु जलविद्युत परियोजना (486 मेगावाट)
* भुटान में वोंगचु जलविद्युत परियोजना (900 मेगावाट)

लाभ पात्र प्रदेश

* हरियाणा	* हिमाचल प्रदेश	* जम्मू कश्मीर
* पंजाब	* राजस्थान	* उत्तर प्रदेश
* उतरांचल	* चण्डीगढ़	* दिल्ली

2008.09	2007.08	2006.07
6609 मि.यू.	6449 मि.यू.	6014 मि.यू.

जुलाई 2009 के दौरान एकल माह में अब तक का सर्वाधिक 1143०7 मि.यू. बिजली उत्पादन

एसजेवीएन कम कार्बन उत्सर्जन की राह पर

विश्व स्तरीय कार्यप्रणालियां अपनाकर कुशलतापूर्वक एवं समय पर निर्मित की जा रही 412 मेगावाट क्षमता की रामपुर जल विद्युत परियोजना से जल विद्युत क्षेत्र की एक विश्वसनीय एवं किफायती विद्युत उत्पादक के रूप में साख बढ़ेगी और देश के ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में बढ़ोत्तरी करने वाले कोयला एवं तेल आधारित ताप विद्युत संयंत्रों के मुकाबले यह एक माकूल विकल्प साबित होगा।

शानदार प्रदर्शन

करोड़ रुपये में

विवरण	2008-09	2007-08	2006-07	2005-06
कर पश्चात लाभ	1015.32	764.51	732.71	498.22
लाभांश	320.00	244.00	235.00	159.43

गुणवता के प्रति संवेदनशीलता

- एनजेएचपीएस एवं आरएचईपी को व्यावसायिक स्वास्थय एवं सुरक्षा प्रबंधन हेतु आईएसओ 18001: 2007
- एनजेएचपीएस एवं आरएचईपी को निर्माण संबंधी गुणवत्ता के लिए आईएसओ 9001: 2000
- एनजेएचपीएस एवं आरएचईपी को पर्यावरणीय प्रबंधन के लिए आईएसओ 14001: 2004

जनता के प्रति संवेदनशीलता

एसजेवीएन द्वारा अंगीकृत विस्तृत पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन नीति में सतत्शील विकास के प्रति कृत संकल्पता और जीवन की गुणवत्ता के उन्नयन के उद्देश्य समाविष्ट हैं।

पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता

- गोल्डन पीकॉक इको-इनोवेशन अवार्ड 2007
- ग्रीनटेक सिल्वर अवार्ड 2006, 2007 एवं 2009
- ग्रीनटेक ब्रॉन्ज अवार्ड 2006 एवं 2007
- ग्रीनटेक सिल्वर अवार्ड 2005
- गोल्डन पीकॉक अवार्ड 2004

एसजेवीएन लिमिटेड

(भारत सरकार एवं हिमाचल प्रदेश सरकार का सयुंक्त उपक्रम)

कारपोरेट मुख्यालयः हिमफेड भवन, न्यू शिमला, शिमला-171009, हिमाचल प्रदेश (भारत)
एक्सपीडाइटिंग कार्यालयः इरकॉन भवन, सी-4, डिस्ट्रिक्ट सेंटर, साकेत, नई दिल्ली-110017
www.sjvn.nic.in

स्वहित एवं राष्ट्र हित में ऊर्जा की बचत करें

RAMADS

श्री सिद्ध बाबा बालक नाथ मन्दिर न्यास दियोटसिद्ध जिला हमीरपुर(हिमाचल प्रदेश) न्यास स्थापना १६.०१.१९८७

२२वीं जयन्ती के शुभ अवसर पर बाबा जी की सुख समद्धि का आशीर्वाद सदैव बना रहे, बाबा जी से यही प्रार्थना है। भारतीय संस्कृति की विराट पृष्ठभूमि में विद्यमान दिव्य स्थलों में से उत्तरी भारत का प्रसिद्ध पीठ श्री सिद्ध बाबा बालक नाथ के परमधाम शिवालिक पर्वतों श्रद्धालुओं में पुण्य प्रतापों के बल पर निरन्तर महिमावान है। यह दिव्य स्थल हि०प्र० के जिला हमीरपुर में दियोटसिद्ध नामक सुरमई पहाड़ी पर प्रतिष्टित है। यह दिव्य स्थल चारों ओर से सड़कों से जुड़ा हुआ है। श्री सिद्ध बाबा बालक नाथ द्वारा दियोटसिद्ध में अपना दिव्य स्थान स्थापित करने से पूर्व शाहतलाई को अपना कर्म स्थल बनाया था। शाहतलाई की दूरी इस इस पावन स्थल से ५ कि०मी० है।

हिमाचल प्रदेश हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्था और पूर्व विन्यासअधिनियम १९८४ के अन्तर्गत दिनांक १६.०१.१९८७ से जब से मन्दिर के संचालन को मन्दिर न्यास ने संभाला है तब से लेकर श्रद्धालुओं व दानियों द्वारा बाबा जी की पवित्र धरती पर श्रद्धालुओं के कदम पड़ते ही उनका स्वागत द्वारों से भव्य स्वागत, जगह–जगह पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्थायें, वर्षा शालिकायें, विश्राम करने के लिए बैंच, बिना लाभ–हानि के दो कंटीनें, नि:शुल्क चिकित्सा सेवा, शौचालयों व स्नानागारों की व्यवस्था जानकारी के लिए स्वागत द्वारों में पूछताछ केन्द्र, खोई वस्तुओं और व्यक्तियों को ढूंढने के लिए पी०ए० सिस्टम की व्यवस्था कक्ष केन्द्र भी स्थापित किया गया है। श्रद्धालुओं के लिए मन्दिर परिसरमें दर्शनार्थ स्थलों में मुख्यत: गूफा दर्शन बाबा जी का अखण्ड धूना, धार्मिक पुस्तकालय, भृर्तहरि मन्दिर, राधा–कृष्ण मन्दिर, चरणपादुका व बाबा जी की तलाई दर्शनीय स्थल है। न्यास स्थापना १६. ०१.१९८७ से आज तक विकास की लम्बी यात्रा तय की है जिसने मुख्यत: स्वागतद्वारों के निमार्ण, बस स्टैंड का निर्माण, भव्य सरायों का निर्माण, लंगर भवन, बकरा स्थल, महिलओं के लिए गुफा दर्शन पलेटफार्म, शौचालय व स्नानागारों , पुरूष व महिलाओं की आवाजाही के अलग रास्तों व शिक्षा में जनता की सेवा में स्नात्कोतर महाविद्याल, संस्कृत महाविद्यालय, उच्च विद्यालय, माडल स्कूल के भवनों का निर्माण किया गया है तथा शिक्षा संस्थानों का संचालन किया जा रहा है।

भविष्य के निर्माण के लिए न्यास प्रस्तावित नई योजनाएं:–

आधुनिक बस स्टैण्ड के द्वितीय चरण के निर्माण व पेयजल आपूर्ति की योजना के विस्तार पर अनुमानित २ करोड़ रूपये की राशि व्यय करने का अनुमान है तथा २० निर्माण कार्यों को आरम्भ करने की योजना है। जिसमें यात्रियों को भविष्य में बड़े पैमाने पर ठहरने के लिए मन्दिर परिसर में विभिन्न स्थानों पर सरायों का निर्माण करना, स्नानागार, शौचालय, मन्दिर परिसर के रास्तों में टाईल्स लगाने का कार्य इत्यादि कार्यों की योजना चरणबद्ध तरीके से संचालित की जा रही है इन योजनाओं पर लगभग १.५० करोड़ रूपये की राशि व्यय करने का अनुमान है।

श्रद्धालुओं/दानियों से न्यास प्रशासन का परम निवेदन रहेगा कि मन्दिर के विकासात्मक कार्य यज्ञ में दान रूपी आहूति डालकर पुण्य के भागी बनें और बाबा जी का आर्शीवाद व वांछित फल पायें। दान की गई राशि की रसीद आवश्य प्राप्त करें और ***आयकर अधिनियम की धारा ८० जी*** के अन्तर्गत आयकर से छूट का लाभ उठायें।

मदन लाल शर्मा,
मन्दिर अधिकारी,
न्यास बाबा बालक नाथ मन्दिर
दियोट सिद्ध जिला हमीरपुर
हि०प्र०
दूरभाष:
का–०१९७२–२८६३५४

सुखदेव सिंह,
(हि०प्र०से०)
उपमण्डलाधिकारी
एवं अध्यक्ष न्यास बाबा बाबा बालक
नाथ मन्दिर दियोट सिद्ध स्थित बड़सर
जिला हमीरपुर हि०प्र०
का०:०१९७२–२८८८०४५

अभिषेक जैन
(भा०प्र०से०)
उपयुक्त एवं आयुक्त
बाबा बालक नाथ मन्दिर
दियोटसिद्ध स्थित
हमीरपुर हि०प्र०
का० ०१९७२–२२४३००